उसके जागनेपर पुनः वे सब इन्द्रियाँ मनसे पृथक् होकर अपना-अपना कार्य करने लगती हैं—ठीक वैसे ही जिस प्रकार सूर्यके उदय होनेपर उसकी किरणें पुनः सब ओर फैल जाती हैं॥ २॥

सम्बन्ध—*अब गार्ग्यके प्रश्नका संक्षेपमें उत्तर देकर दो मन्त्रोंद्वारा यह भी बतलाते हैं कि सब इन्द्रियोंके लय होनेपर मनकी कैसी स्थिति रहती है—*

प्राणाग्नय एवैतस्मिन्पुरे जाग्रति। गार्हपत्यो ह वा एषोऽपानो व्यानोऽन्वाहार्यपचनो यद्गार्हपत्यात् प्रणीयते प्रणयनादाहवनीयः प्राणः ॥ ३ ॥

एतस्मिन् पुरे=इस शरीररूप नगरमें; **प्राणाग्नयः एव**=पाँच प्राणरूप अग्नियाँ ही; **जाग्रति**=जागती रहती हैं; **ह एषः अपानः वै**=यह प्रसिद्ध अपान ही; **गार्हपत्यः**=गार्हपत्य अग्नि है; **व्यानः**=व्यान; **अन्वाहार्यपचनः**= अन्वाहार्यपचन नामक अग्नि (दक्षिणाग्नि) है; **गार्हपत्यात् यत् प्रणीयते**= गार्हपत्य अग्निसे जो उठाकर ले जायी जाती है (वह); **आहवनीयः**= आहवनीय अग्नि; **प्रणयनात्**=प्रणयन (उठाकर ले जाये जाने) के कारण ही; **प्राणः**=प्राणरूप है॥ ३॥

व्याख्या—उस समय इस मनुष्य-शरीररूप नगरमें पाँच प्राणरूप अग्नियाँ ही जागती रहती हैं। यह गार्ग्यद्वारा पूछे हुए दूसरे प्रश्नका संक्षेपमें उत्तर है। यहाँ निद्राको यज्ञका रूप देनेके लिये पाँचों प्राणोंको अग्निरूप बतलाया है। यज्ञमें अग्निकी प्रधानता होती है, इसलिये यहाँ संक्षेपतः प्राणमात्रको अग्निके नामसे कह दिया। परंतु आगे इस यज्ञके रूपकमें किस प्राणवृत्तिकी किसके

मानते हैं (पा० यो० १। १०)। इससे तो यह जान पड़ता है कि मन विलीन नहीं होता। परंतु अगले मन्त्रमें पञ्चवृत्त्यात्मक प्राणको ही जागनेवाला बतलाया गया है, मनको नहीं; अतः मनका लय होता है या नहीं— यह बात स्पष्ट नहीं होती; क्योंकि पुनः चतुर्थ मन्त्रमें मनको यजमान बताकर उसके ब्रह्मलोकमें जानेकी बात कही गयी है। इससे यह कहा जा सकता है कि मनका भी लय हो जाता है।

स्थानमें कल्पना करनी चाहिये, इसका स्पष्टीकरण करते हैं। कहना यह है कि शरीरमें जो प्राणकी अपान वृत्ति है, यही मानो उस यज्ञकी 'गार्हपत्य' अग्नि है; 'व्यान' दक्षिणाग्नि है, गार्हपत्य अग्निरूप अपानसे प्राण उठते हैं, इस कारण मुख्य प्राण ही इस यज्ञकी कल्पनामें आहवनीय अग्नि है; क्योंकि यज्ञमें आहवनीय अग्नि गार्हपत्यसे उठाकर लायी जाती है। पहले तीसरे प्रश्नके प्रसङ्गमें भी प्राणको 'अन्नरूप आहुति जिसमें हवन की जाती है' इस व्युत्पत्तिद्वारा आहवनीय अग्नि ही बताया है (३।५) ॥ ३ ॥

यदुच्छ्वासनिःश्वासावेतावाहुती समं नयतीति स समानः। मनो ह वाव यजमानः। इष्टफलमेवोदानः। स एनं यजमानमहरहर्ब्रह्म गमयति ॥ ४ ॥

यत् उच्छ्वासनिःश्वासौ=जो ऊर्ध्वश्वास और अधोश्वास हैं; **एतौ**=ये दोनों (मानो); **आहुती**=(अग्निहोत्रकी) दो आहुतियाँ हैं; **[एतौ यः]**=इनको जो; **समम्**=समभावसे (सब ओर); **नयति इति सः समानः**=पहुँचाता है इसलिये जो 'समान' कहलाता है, वही; **[होता]**=हवन करनेवाला ऋत्विक् है; **ह मनः वाव**=यह प्रसिद्ध मन ही; **यजमानः**=यजमान है; **इष्टफलम् एव**=अभीष्ट फल ही; **उदानः**=उदान है; **सः एनम्**=वह (उदान) ही इस; **यजमानम् अहः अहः**=मनरूप यजमानको प्रतिदिन (निद्राके समय); **ब्रह्म गमयति**=ब्रह्मलोकमें भेजता है अर्थात् हृदयगुहामें ले जाता है ॥ ४ ॥

व्याख्या—यह जो मुख्य प्राणका श्वास-प्रश्वासके रूपमें शरीरके बाहर निकलना और भीतर लौट जाना है, वही मानो इस यज्ञमें आहुतियाँ पड़ती हैं। इन आहुतियोंद्वारा जो शरीरके पोषक-तत्त्व शरीरमें प्रवेश कराये जाते हैं, वे ही हवि हैं। उस हविको समस्त शरीरमें आवश्यकतानुसार समभावसे पहुँचानेका कार्य समान वायुका है; इसलिये उसे समान कहते हैं। वही इस रूपकमें मानो 'होता' अर्थात् हवन करनेवाला ऋत्विक् है। अग्निरूप होनेपर भी आहुतियोंको पहुँचानेका कार्य करनेके कारण इसे 'होता' कहा गया है। पहले बताया हुआ मन ही मानो यजमान है और उदानवायु ही मानो उस

यजमानका अभीष्ट फल है; क्योंकि जिस प्रकार अग्निहोत्र करनेवाले यजमानको उसका अभीष्ट फल उसे अपनी ओर आकर्षित करके कर्मफल भुगतानेके लिये कर्मानुसार स्वर्गादि लोकोंमें ले जाता है, उसी प्रकार यह उदानवायु मनको प्रतिदिन निद्राके समय उसके कर्मफलके भोगस्वरूप ब्रह्मलोकमें परमात्माके निवासस्थानरूप हृदयगुहामें ले जाता है। वहाँ इस मनके द्वारा जीवात्मा निद्राजनित विश्रामरूप सुखका अनुभव करता है; क्योंकि जीवात्माका निवासस्थान भी वही है, यह बात छठे मन्त्रमें कही है। यहाँ '**ब्रह्म गमयति**' से यह बात नहीं समझनी चाहिये कि निद्राजनित सुख ब्रह्मप्राप्तिके सुखकी किसी भी अंशमें समानता कर सकता है; क्योंकि यह तो तामस सुख है और परब्रह्म परमेश्वरकी प्राप्तिका सुख तीनों गुणोंसे अतीत है ॥ ४ ॥

सम्बन्ध—*अब तीसरे प्रश्नका उत्तर देते हैं*—

अत्रैष देवः स्वप्ने महिमानमनुभवति। यद् दृष्टं दृष्टमनुपश्यति श्रुतं श्रुतमेवार्थमनुशृणोति। देशदिगन्तरैश्च प्रत्यनुभूतं पुनः पुनः प्रत्यनुभवति दृष्टं चादृष्टं च श्रुतं चाश्रुतं चानुभूतं चाननुभूतं च सच्चासच्च सर्वं पश्यति सर्वः पश्यति ॥ ५ ॥

अत्र स्वप्ने=इस स्वप्न-अवस्थामें; **एषः देवः**=यह देव (जीवात्मा); **महिमानम्**=अपनी विभूतिका; **अनुभवति**=अनुभव करता है; **यत् दृष्टम् दृष्टम्**=जो बार-बार देखा हुआ है; **अनुपश्यति**=उसीको बार-बार देखता है; **श्रुतम् श्रुतम् एव अर्थम् अनुशृणोति**=बार-बार सुनी हुई बातोंको ही पुनः-पुनः सुनता है; **देशदिगन्तरैः च**=नाना देश और दिशाओंमें; **प्रत्यनुभूतम्**=बार-बार अनुभव किये हुए विषयोंको; **पुनः पुनः**=पुनः-पुनः; **प्रत्यनुभवति**=अनुभव करता है (इतना ही नहीं); **दृष्टम् च अदृष्टम् च**=देखे हुए और न देखे हुए को भी; **श्रुतम् च अश्रुतम् च**=सुने हुए और न सुने हुएको भी; **अनुभूतम् च**=अनुभव किये हुए और; **अननुभूतम् च**=अनुभव न किये हुएको भी; **सत् च असत् च**=विद्यमान और अविद्यमानको भी; (इस प्रकार) **सर्वम् पश्यति**=सारी घटनाओंको देखता है; (तथा) **सर्वः [सन्]**=स्वयं सब कुछ

बनकर; **पश्यति**=देखता है ॥ ५ ॥

व्याख्या—गार्ग्य मुनिने जो यह तीसरा प्रश्न किया था कि कौन देवता स्वप्नोंको देखता है? उसका उत्तर महर्षि पिप्पलाद इस प्रकार देते हैं, इस स्वप्न-अवस्थामें जीवात्मा ही मन और सूक्ष्म इन्द्रियोंद्वारा अपनी विभूतिका अनुभव करता है। इसका पहले जहाँ-कहीं भी जो कुछ बार-बार देखा, सुना और अनुभव किया हुआ है, उसीको यह स्वप्नमें बार-बार देखता, सुनता और अनुभव करता रहता है। परंतु यह नियम नहीं है कि जाग्रत्-अवस्थामें इसने जिस प्रकार, जिस ढंगसे और जिस जगह जो घटना देखी, सुनी और अनुभव की है, उसी प्रकार यह स्वप्नमें भी अनुभव करता है। अपितु स्वप्नमें जाग्रत्की किसी घटनाका कोई अंश किसी दूसरी घटनाके किसी अंशके साथ मिलकर एक नये ही रूपमें इसके अनुभवमें आता है; अतः कहा जाता है कि स्वप्नकालमें यह देखे और न देखे हुएको भी देखता है, सुने और न सुने हुएको भी सुनता है, अनुभव किये हुए और अनुभव न किये हुएको भी अनुभव करता है। जो वस्तु वास्तवमें है, उसे और जो नहीं है, उसे भी स्वप्नमें देख लेता है। इस प्रकार स्वप्नमें यह विचित्र ढंगसे सब घटनाओंका बार-बार अनुभव करता रहता है और स्वयं ही सब कुछ बनकर देखता है। उस समय जीवात्माके अतिरिक्त कोई दूसरी वस्तु नहीं रहती ॥ ५ ॥

स यदा तेजसाभिभूतो भवत्यत्रैष देवः स्वप्नान्न पश्यत्यथ तदैतस्मिञ्शरीर एतत्सुखं भवति ॥ ६ ॥

सः यदा=वह (मन) जब; **तेजसा अभिभूतः**=तेज (उदानवायु) से अभिभूत; **भवति**=हो जाता है*; **अत्र एषः देवः**=इस स्थितिमें यह जीवात्मा-

* पहले तीसरे प्रश्नोत्तर (३। ९-१०) में बतला आये हैं कि उदानवायुका नाम तेज है। इस प्रकरणमें भी कहा गया है कि उदानवायु ही मनको ब्रह्मलोकमें अर्थात् हृदयमें ले जाता है, अतः यहाँ तेजसे अभिभूत होनेका अर्थ मनका उदानवायुसे आक्रान्त हो जाना है—यह बात समझनी चाहिये।

रूप देवता; **स्वप्नान्**=स्वप्नोंको; **न पश्यति**=नहीं देखता; **अथ**=तथा; **तदा**=उस समय; **एतस्मिन् शरीरे**=इस मनुष्य-शरीरमें (जीवात्माको); **एतत्**=इस; **सुखम्**=सुषुप्तिके सुखका अनुभव; **भवति**=होता है ॥ ६ ॥

व्याख्या—गार्ग्य मुनिने चौथी बात यह पूछी थी कि 'निद्रामें सुखका अनुभव किसको होता है ? उसका उत्तर महर्षि इस प्रकार देते हैं—जब निद्राके समय यह मन उदानवायुके अधीन हो जाता है, अर्थात् जब उदान-वायु इस मनको जीवात्माके निवासस्थान हृदयमें पहुँचाकर मोहित कर देता है, उस निद्रावस्थामें यह जीवात्मा मनके द्वारा स्वप्नकी घटनाओंको नहीं देखता। उस समय निद्राजनित सुखका अनुभव जीवात्माको ही होता है। इस शरीरमें सुख-दुःखोंको भोगनेवाला प्रत्येक अवस्थामें प्रकृतिस्थ पुरुष अर्थात् जीवात्मा ही है (गीता १३। २१) ॥ ६ ॥

स यथा सोम्य वयांसि वासोवृक्षं सम्प्रतिष्ठन्ते एवं ह वै तत् सर्वं पर आत्मनि सम्प्रतिष्ठते ॥ ७ ॥

सः=(पाँचवीं बात जो तुमने पूछी थी) वह (इस प्रकार समझनी चाहिये); **सोम्य**=हे प्रिय; **यथा**=जिस प्रकार; **वयांसि**=बहुत-से पक्षी (सायंकालमें); **वासोवृक्षम्**=अपने निवासरूप वृक्षपर (आकर); **सम्प्रतिष्ठन्ते**=आरामसे ठहरते हैं (बसेरा लेते हैं); **ह एवम् वै तत् सर्वम्**=ठीक वैसे ही वे (आगे बताये जानेवाले पृथिवी आदि तत्त्वोंसे लेकर प्राणतक) सब-के-सब; **परे आत्मनि**=परमात्मामें; **सम्प्रतिष्ठते**=सुखपूर्वक आश्रय पाते हैं ॥ ७ ॥

व्याख्या—गार्ग्य मुनिने जो यह पाँचवीं बात पूछी थी कि 'ये मन, बुद्धि, इन्द्रियाँ और प्राण—सब-के-सब किसमें स्थित हैं—किसके आश्रित हैं।' उसका उत्तर महर्षि इस प्रकार देते हैं—प्यारे गार्ग्य ! आकाशमें उड़नेवाले पक्षिगण जिस प्रकार सायंकालमें लौटकर अपने निवासभूत वृक्षपर आरामसे बसेरा लेते हैं, ठीक उसी प्रकार आगे बतलाये जानेवाले पृथ्वीसे लेकर प्राणतक जितने तत्त्व हैं, वे सब-के-सब परब्रह्म पुरुषोत्तममें, जो कि सबके

आत्मा हैं, आश्रय लेते हैं; क्योंकि वे ही इन सबके परम आश्रय हैं ॥ ७ ॥

पृथिवी च पृथिवीमात्रा चापश्चापोमात्रा च तेजश्च तेजोमात्रा च वायुश्च वायुमात्रा चाकाशश्चाकाशमात्रा च चक्षुश्च द्रष्टव्यं च श्रोत्रं च श्रोतव्यं च घ्राणं च घ्रातव्यं च रसश्च रसयितव्यं च त्वक्च स्पर्शयितव्यं च वाक्च वक्तव्यं च हस्तौ चादातव्यं चोपस्थश्चानन्दयितव्यं च पायुश्च विसर्जयितव्यं च पादौ च गन्तव्यं च मनश्च मन्तव्यं च बुद्धिश्च बोद्धव्यं चाहङ्कारश्चाहङ्कर्तव्यं च चित्तं च चेतयितव्यं च तेजश्च विद्योतयितव्यं च प्राणश्च विधारयितव्यं च ॥ ८ ॥

पृथिवी च=पृथिवी और; **पृथिवीमात्रा च**=उसकी तन्मात्रा (सूक्ष्म गन्ध) भी; **आपः च आपोमात्रा च**=जल और रसतन्मात्रा भी; **तेजः च तेजोमात्रा च**=तेज और रूप-तन्मात्रा भी; **वायुः च वायुमात्रा च**=वायु और स्पर्श-तन्मात्रा भी; **आकाशः च आकाशमात्रा च**=आकाश और शब्द-तन्मात्रा भी; **चक्षुः च द्रष्टव्यम् च**=नेत्र-इन्द्रिय और देखनेमें आनेवाली वस्तु भी; **श्रोत्रम् च श्रोतव्यम् च**=श्रोत्र-इन्द्रिय और सुननेमें आनेवाली वस्तु भी; **घ्राणम् च घ्रातव्यम् च**=घ्राणेन्द्रिय और सूँघनेमें आनेवाली वस्तु भी; **रसः च रसयितव्यम् च**=रसना-इन्द्रिय और रसनाके विषय भी; **त्वक् च स्पर्शयितव्यम् च**=त्वक्-इन्द्रिय और स्पर्शमें आनेवाली वस्तु भी; **वाक् च वक्तव्यम् च**=वाक्-इन्द्रिय और बोलनेमें आनेवाला शब्द भी; **हस्तौ च आदातव्यम् च**=दोनों हाथ और पकड़नेमें आनेवाली वस्तु भी; **उपस्थः च आनन्दयितव्यम् च**=उपस्थ-इन्द्रिय और उसका विषय भी; **पायुः च विसर्जयितव्यम् च**=गुदा-इन्द्रिय और उसके द्वारा परित्यागयोग्य वस्तु भी; **पादौ च गन्तव्यम् च**=दोनों चरण और गन्तव्य स्थान भी; **मनः च मन्तव्यम् च**=मन और मननमें आनेवाली वस्तु भी; **बुद्धिः च बोद्धव्यम् च**=बुद्धि और जाननेमें आनेवाली वस्तु भी; **अहङ्कारः च अहङ्कर्तव्यम् च**=अहंकार और उसका विषय भी; **चित्तं च चेतयितव्यम् च**=चित्त और चिन्तनमें आनेवाली वस्तु भी; **तेजः च विद्योतयितव्यम् च**=प्रभाव और उसका विषय भी; **प्राणः च**

विधारयितव्यम् च=प्राण और प्राणके द्वारा धारण किये जानेवाले पदार्थ भी (ये सब-के-सब परमात्माके आश्रित हैं) ॥ ८ ॥

व्याख्या—इस मन्त्रमें यह बात कही गयी है कि स्थूल और सूक्ष्म पाँचों महाभूत, दसों इन्द्रियाँ और उनके विषय, चारों प्रकारके अन्तःकरण और उनके विषय तथा पाँच भेदोंवाला प्राणवायु—सब-के-सब परमात्माके ही आश्रित हैं। कहना यह है कि स्थूल पृथ्वी और उसका कारण गन्ध-तन्मात्रा, स्थूल जल-तत्त्व और उसका कारण रस-तन्मात्रा, स्थूल तेज-तत्त्व और उसका कारण रूप-तन्मात्रा, स्थूल वायु-तत्त्व और उसका कारण स्पर्श-तन्मात्रा, स्थूल आकाश और उसका कारण शब्द-तन्मात्रा—इस प्रकार अपने कारणोंसहित पाँचों भूत तथा नेत्र-इन्द्रिय और उसके द्वारा देखनेमें आनेवाली वस्तुएँ, श्रोत्र-इन्द्रिय और उसके द्वारा जो कुछ सुना जा सकता है वह सब, घ्राणेन्द्रिय और उसके द्वारा सूँघनेमें आनेवाले पदार्थ, रसना-इन्द्रिय और उसके द्वारा आस्वादनमें आनेवाले खट्टे-मीठे आदि सब प्रकारके रस, त्वचा-इन्द्रिय और उसके द्वारा स्पर्श करनेमें आनेवाले सब पदार्थ, वाक्-इन्द्रिय और उसके द्वारा बोले जानेवाले शब्द, दोनों हाथ और उनके द्वारा पकड़नेमें आनेवाली सब वस्तुएँ, दोनों पैर और उनके गन्तव्य स्थान, उपस्थ-इन्द्रिय और मैथुनका सुख, गुदा-इन्द्रिय और उसके द्वारा त्यागा जानेवाला मल, मन और उसके द्वारा मनन करनेमें आनेवाले सब पदार्थ, बुद्धि और उसके द्वारा जाननेमें आनेवाले सब पदार्थ, अहंकार और उसका विषय, चित्त और चित्तके द्वारा चिन्तनमें आनेवाले पदार्थ, प्रभाव और प्रभावसे प्रभावित होनेवाली वस्तु एवं पाँच वृत्तिवाला प्राण और उसके द्वारा जीवन देकर धारण किये जानेवाले सब शरीर—ये सब-के-सब इसके कारणभूत परमेश्वरके ही आश्रित हैं॥ ८ ॥

एष हि द्रष्टा स्प्रष्टा श्रोता घ्राता रसयिता मन्ता बोद्धा कर्ता विज्ञानात्मा पुरुषः स परेऽक्षर आत्मनि सम्प्रतिष्ठते ॥ ९ ॥

एषः=यह जो; **द्रष्टा स्प्रष्टा**=देखनेवाला, स्पर्श करनेवाला; **श्रोता घ्राता**=सुननेवाला, सूँघनेवाला; **रसयिता मन्ता**=स्वाद लेनेवाला, मनन करने-

वाला; **बोद्धा कर्ता**=जाननेवाला तथा कर्म करनेवाला; **विज्ञानात्मा**=विज्ञान-स्वरूप; **पुरुषः**=पुरुष (जीवात्मा) है; **सः हि**=वह भी; **अक्षरे**=अविनाशी; **परे आत्मनि**=परमात्मामें; **सम्प्रतिष्ठते**=भलीभाँति स्थित है ॥ ९ ॥

व्याख्या—देखनेवाला, स्पर्श करनेवाला, सुननेवाला, सूँघनेवाला, स्वाद लेनेवाला, मनन करनेवाला, जाननेवाला तथा सम्पूर्ण इन्द्रियों और मनके द्वारा समस्त कर्म करनेवाला जो यह विज्ञानस्वरूप पुरुष—जीवात्मा है, यह भी उन परम अविनाशी सबके आत्मा परब्रह्म पुरुषोत्तममें ही स्थिति पाता है। उन्हें प्राप्त कर लेनेपर ही इसे वास्तविक शान्ति मिलती है; अतः इसके भी परम आश्रय वे परमेश्वर ही हैं॥ ९ ॥

परमेवाक्षरं प्रतिपद्यते स यो ह वै तदच्छाय-मशरीरमलोहितं शुभ्रमक्षरं वेदयते यस्तु सोम्य। स सर्वज्ञः सर्वो भवति। तदेष श्लोकः ॥ १० ॥

ह यः वै=निश्चय ही जो कोई भी; **तत् अच्छायम्**=उस छायारहित; **अशरीरम्**=शरीररहित; **अलोहितम्**=लाल, पीले आदि रंगोंसे रहित; **शुभ्रम् अक्षरम्**=विशुद्ध अविनाशी पुरुषको; **वेदयते**=जानता है; **सः**=वह; **परम् अक्षरम् एव**=परम अविनाशी परमात्माको ही; **प्रतिपद्यते**=प्राप्त हो जाता है; **सोम्य**=हे प्रिय !; **यः तु [एवम्]**=जो कोई ऐसा है; **सः सर्वज्ञः**=वह सर्वज्ञ (और); **सर्वः भवति**=सर्वरूप हो जाता है; **तत् एषः**=उस विषयमें यह (अगला); **श्लोकः**=श्लोक है॥ १० ॥

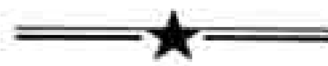
व्याख्या—यह निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि जो कोई भी मनुष्य उन छायारहित, शरीररहित, लाल-पीले आदि सब रंगोंसे रहित, विशुद्ध अविनाशी परमात्माको जान लेता है, वह परम अक्षर परमात्माको ही प्राप्त हो जाता है—इसमें तनिक भी संशय नहीं है। हे सोम्य ! जो कोई भी ऐसा है, अर्थात् जो भी उस परब्रह्म परमेश्वरको प्राप्त कर लेता है, वह सर्वज्ञ और सर्वरूप हो जाता है। इस विषयमें निम्नलिखित ऋचा है॥ १० ॥

विज्ञानात्मा सह देवैश्च सर्वैः
प्राणा भूतानि सम्प्रतिष्ठन्ति यत्र।
तदक्षरं वेदयते यस्तु सोम्य
स सर्वज्ञः सर्वमेवाविवेशेति ॥ ११ ॥

यत्र=जिसमें; **प्राणाः**=समस्त प्राण (और); **भूतानि च**=पाँचों भूत तथा; **सर्वैः देवैः सह**=सम्पूर्ण इन्द्रिय और अन्तःकरणके सहित; **विज्ञानात्मा**=विज्ञानस्वरूप आत्मा; **सम्प्रतिष्ठन्ति**=आश्रय लेते हैं; **सोम्य**=हे प्रिय !; **तत् अक्षरम्**=उस अविनाशी परमात्माको; **यः तु वेदयते**=जो कोई जान लेता है; **सः सर्वज्ञः**=वह सर्वज्ञ है; **सर्वम् एव**=(वह) सर्वस्वरूप परमेश्वरमें; **आविवेश**=प्रविष्ट हो जाता है; **इति**=इस प्रकार (इस प्रश्नका उत्तर समाप्त हुआ) ॥ ११ ॥

व्याख्या—सबके परम कारण जिन परमेश्वरमें समस्त प्राण और पाँचों महाभूत तथा समस्त इन्द्रियाँ और अन्तःकरणके सहित स्वयं विज्ञानस्वरूप जीवात्मा—ये सब आश्रय लेते हैं, उन परम अक्षर अविनाशी परमात्माको जो कोई जान लेता है, वह सर्वज्ञ है तथा सर्वरूप परमेश्वरमें प्रविष्ट हो जाता है। इस प्रकार यह चतुर्थ प्रश्न समाप्त हुआ ॥ ११ ॥

॥ चतुर्थ प्रश्न समाप्त ॥ ४ ॥



पञ्चम प्रश्न

अथ हैनं शैब्यः सत्यकामः पप्रच्छ। स यो ह वै तद्भगवन्मनुष्येषु प्रायणान्तमोङ्कारमभिध्यायीत। कतमं वाव स तेन लोकं जयतीति ॥ १ ॥

अथ ह एनम्=उसके बाद इन ख्यातनामा महर्षि पिप्पलादसे; **शैब्यः सत्यकामः**=शिबिपुत्र सत्यकामने; **पप्रच्छ**=पूछा; **भगवन्**=भगवन्; **मनुष्येषु**=मनुष्योंमेंसे; **सः यः ह वै**=वह जो कोई भी; **प्रायणान्तम्**=मृत्युपर्यन्त; **तत्**

ओंकारम्=उस ओंकारका; **अभिध्यायीत**=सदा भलीभाँति ध्यान करता है; **सः तेन**=वह उस उपासनाके बलसे; **कतमम् लोकम्**=किस लोकको; **वाव जयति**=निस्संदेह जीत लेता है; **इति**=यह (मेरा प्रश्न है) ॥ १ ॥

व्याख्या—इस मन्त्रमें सत्यकामने ओंकारकी उपासनाके विषयमें प्रश्न किया है। उसने यही जिज्ञासा की है कि जो मनुष्य आजीवन सदा ओंकारकी भलीभाँति उपासना करता है, उसे उस उपासनाके द्वारा कौन-से लोकको प्राप्ति होती है, अर्थात् उसका क्या फल मिलता है ॥ १ ॥

तस्मै स होवाच एतद्वै सत्यकाम परं चापरं च ब्रह्म यदोङ्कारः।
तस्माद्विद्वानेतेनैवायतनेनैकतरमन्वेति ॥ २ ॥

तस्मै सः ह उवाच=उससे उन प्रसिद्ध महर्षिने कहा; **सत्यकाम**=हे सत्यकाम; **एतत् वै**=निश्चय ही यह; **यत् ओंकारः**=जो ओंकार है; **परम् ब्रह्म च अपरम् च**=(वही) परब्रह्म और अपरब्रह्म भी है; **तस्मात्**=इसलिये; **विद्वान्**=इस प्रकारका ज्ञान रखनेवाला मनुष्य; **एतेन एव**=इस एक ही; **आयतनेन**=अवलम्बसे (अर्थात् प्रणवमात्रके चिन्तनसे); **एकतरम्**=अपर और परब्रह्ममेंसे किसी एकका; **अन्वेति**=(अपनी श्रद्धाके अनुसार) अनुसरण करता है ॥ २ ॥

व्याख्या—इसके उत्तरमें महर्षि पिप्पलाद '**ओम्**' इस अक्षरकी उसके लक्ष्यभूत परब्रह्म पुरुषोत्तमके साथ एकता करते हुए कहते हैं—सत्यकाम! यह जो '**ॐ**' है, वह अपने लक्ष्यभूत परब्रह्म परमेश्वरसे भिन्न नहीं है। इसलिये यही परब्रह्म है और यही उन परब्रह्मसे प्रकट हुआ उनका विराट्-स्वरूप—अपर ब्रह्म भी है।* केवल इसी एक ओंकारका जप, स्मरण और चिन्तन करके उसके द्वारा अपने इष्टको चाहनेवाला विज्ञानसम्पन्न मनुष्य उसे पा लेता है। भाव यह है कि जो मनुष्य परमेश्वरके विराट्-स्वरूप—इस

---

* कठोपनिषद् १।२।१६ में भी यही बात कही है, वहाँ 'अपरम्' विशेषण नहीं दिया है।

जगत्के ऐश्वर्यमय किसी भी अङ्गको प्राप्त करनेकी इच्छासे ओंकारकी उपासना करता है, वह अपनी भावनाके अनुसार विराट्-स्वरूप परमेश्वरके किसी एक अङ्गको प्राप्त करता है और जो इसके अन्तर्यामी आत्मा पूर्ण ब्रह्म पुरुषोत्तमको लक्ष्य बनाकर उनको पानेके लिये निष्कामभावसे इसकी उपासना करता है, वह परब्रह्म पुरुषोत्तमको पा लेता है। यही बात अगले मन्त्रोंमें भी स्पष्ट की गयी है ॥ २ ॥

स यद्येकमात्रमभिध्यायीत स तेनैव संवेदितस्तूर्णमेव जगत्यामभिसम्पद्यते। तमृचो मनुष्यलोकमुपनयन्ते स तत्र तपसा ब्रह्मचर्येण श्रद्धया सम्पन्नो महिमानमनुभवति ॥ ३ ॥

सः यदि=वह उपासक यदि; **एकमात्रम्**=एक मात्रासे युक्त ओंकारका; **अभिध्यायीत**=भलीभाँति ध्यान करे तो; **सः तेन एव**=वह उस उपासनासे ही; **संवेदितः**=अपने ध्येयकी ओर प्रेरित किया हुआ; **तूर्णम् एव**=शीघ्र ही; **जगत्याम्**=पृथ्वीमें; **अभिसम्पद्यते**=उत्पन्न हो जाता है; **तम् ऋचः**=उसको ऋग्वेदकी ऋचाएँ; **मनुष्यलोकम्**=मनुष्य-शरीर; **उपनयन्ते**=प्राप्त करा देती हैं; **तत्र सः**=वहाँ वह उपासक; **तपसा ब्रह्मचर्येण श्रद्धया सम्पन्नः**=तप, ब्रह्मचर्य और श्रद्धासे सम्पन्न होकर; **महिमानम्**=महिमाका; **अनुभवति**=अनुभव करता है ॥ ३ ॥

व्याख्या—ओंकारका चिन्तन करनेवाला मनुष्य यदि विराट् परमेश्वरके **भूः**, **भुवः** और **स्वः**—इन तीनों रूपोंमेंसे भूलोकके ऐश्वर्यमें आसक्त होकर उसकी प्राप्तिके लिये ओंकारकी उपासना करता है तो वह मरनेके बाद अपने प्रापणीय ऐश्वर्यकी ओर प्रेरित होकर तत्काल पृथ्वीलोकमें आ जाता है। ॐकारकी पहली मात्रा ऋग्वेदस्वरूपा है, उसका पृथ्वीलोकसे सम्बन्ध है; अतः उसके चिन्तनसे साधकको ऋग्वेदकी ऋचाएँ पुनः मनुष्य-शरीरमें प्रविष्ट करा देती हैं। वह उस नवीन मनुष्य-जन्ममें तप, ब्रह्मचर्य और श्रद्धासे सम्पन्न उत्तम आचरणोंवाला श्रेष्ठ मनुष्य बनकर अतिशय ऐश्वर्यका उपभोग करता है, अर्थात् उसे नीची योनियोंमे नहीं भटकना पड़ता, वह मरनेके बाद मनुष्य

होकर पुनः शुभ कर्म करनेमें समर्थ हो जाता है और वहाँ नाना प्रकारके सुखोंका उपभोग करता है ॥ ३ ॥

अथ यदि द्विमात्रेण मनसि सम्पद्यते सोऽन्तरिक्षं यजुर्भिरुन्नीयते सोमलोकम्। स सोमलोके विभूतिमनुभूय पुनरावर्तते ॥ ४ ॥

अथ यदि=परंतु यदि; **द्विमात्रेण**=दो मात्राओंसे युक्त (ओंकारका); [**अभिध्यायीत**]=अच्छी प्रकार ध्यान करता है तो (उससे); **मनसि**=मनोमय चन्द्रलोकको; **सम्पद्यते**=प्राप्त होता है; **सः यजुर्भिः**=वह यजुर्वेदके मन्त्रोंद्वारा; **अन्तरिक्षम्**=अन्तरिक्षमें स्थित; **सोमलोकम्**=चन्द्रलोकको; **उन्नीयते**=ऊपरकी ओर ले जाया जाता है; **सः सोमलोके**=वह चन्द्रलोकमें; **विभूतिम्**=वहाँके ऐश्वर्यका; **अनुभूय**=अनुभव करके; **पुनः आवर्तते**=पुनः इस लोकमें लौट आता है ॥ ४ ॥

व्याख्या—यदि साधक दो मात्रावाले ओंकारकी उपासना करता है; अर्थात् उस विराट्-स्वरूप परमेश्वरके अङ्गभूत **भूः** (मनुष्यलोक) और **भुवः** (स्वर्गलोक)—इन दोनोंके ऐश्वर्यकी अभिलाषासे—उसीको लक्ष्य बनाकर ओंकारकी उपासना करता है तो वह मनोमय चन्द्रलोकको प्राप्त होता है; उसको यजुर्वेदके मन्त्र अन्तरिक्षमें ऊपरकी ओर चन्द्रलोकमें पहुँचा देते हैं। उस विनाशशील स्वर्गलोकमें नाना प्रकारके ऐश्वर्यका उपभोग करके अपनी उपासनाके पुण्यका क्षय हो जानेपर पुनः मृत्युलोकमें आ जाता है। वहाँ उसे अपने पूर्वकर्मानुसार मनुष्य-शरीर या उससे कोई नीची योनि मिल जाती है ॥ ४ ॥

यः पुनरेतं त्रिमात्रेणोमित्येतेनैवाक्षरेण परं पुरुषमभिध्यायीत स तेजसि सूर्ये सम्पन्नः। यथा पादोदरस्त्वचा। विनिर्मुच्यत एवं ह वै स पाप्मना विनिर्मुक्तः स सामभिरुन्नीयते ब्रह्मलोकं स एतस्माज्जीवघनात् परात्परं पुरिशयं पुरुषमीक्षते तदेतौ श्लोकौ भवतः ॥ ५ ॥

पुनः यः=परंतु जो; **त्रिमात्रेण**=तीन मात्राओंवाले; **ओम् इति**=ओम-

रूप; **एतेन अक्षरेण एव**=इस अक्षरके द्वारा ही; **एतम् परम् पुरुषम्**=इस परम पुरुषका; **अभिध्यायीत**=निरन्तर ध्यान करता है; **सः तेजसि**=वह तेजोमय; **सूर्ये सम्पन्नः**=सूर्यलोकमें जाता है; (तथा) **यथा पादोदरः**=जिस प्रकार सर्प; **त्वचा विनिर्मुच्यते**=केंचुलीसे अलग हो जाता है; **एवम् ह वै**=ठीक उसी तरह; **सः पाप्मना**=वह पापोंसे; **विनिर्मुक्तः**=सर्वथा मुक्त हो जाता है; **सः**=(इसके बाद) वह; **सामभिः**=सामवेदकी श्रुतियोंद्वारा; **ब्रह्मलोकम् उन्नीयते**=ऊपर ब्रह्मलोकमें ले जाया जाता है; **सः एतस्मात्**=वह इस; **जीवघनात्**=जीवसमुदायरूप; **परात् परम्**=परमतत्त्वसे अत्यन्त श्रेष्ठ; **पुरिशयम्**=शरीररूप नगरमें रहनेवाले अन्तर्यामी; **पुरुषम्**=परमपुरुष पुरुषोत्तमको; **ईक्षते**=साक्षात् कर लेता है; **तत् एतौ**=इस विषयमें ये (अगले); **श्लोकौ भवतः**=दो श्लोक हैं॥ ५॥

व्याख्या—इस मन्त्रमें 'पुनः' शब्दके प्रयोगसे यह सूचित होता है कि उपर्युक्त कथनके अनुसार इस लोक और स्वर्गलोकतकके ऐश्वर्यकी अभिलाषासे अपर ब्रह्मको लक्ष्य बनाकर ओंकारकी उपासना करनेवाले साधकोंसे विलक्षण साधकका यहाँ वर्णन किया गया है। उपासनाका सर्वोत्तम प्रकार यही है—यह भाव प्रकट करनेके लिये ही इस मन्त्रमें 'यदि' पदका प्रयोग भी नहीं किया गया है; क्योंकि इसमें कोई विकल्प नहीं है। इस मन्त्रमें यह भी स्पष्टरूपसे बतला दिया गया है कि ओंकार उस परब्रह्मका नाम है, इसके द्वारा उस परब्रह्म परमेश्वरकी उपासना की जाती है। मन्त्रमें कहा गया है कि जो कोई साधक इन तीन मात्राओंवाले ओंकारस्वरूप अक्षरद्वारा परब्रह्म परमेश्वरकी उपासना करता है, वह जैसे सर्प केंचुलीसे अलग हो जाता है—उसी प्रकार सब प्रकारके कर्मबन्धनोंसे छूटकर सर्वथा निर्विकार हो जाता है। उसे सामवेदके मन्त्र तेजोमय सूर्यमण्डलमेंसे ले जाकर सर्वोपरि ब्रह्मलोकमें पहुँचा देते हैं। वहाँ वह जीव समुदायरूप चेतनतत्त्वसे अत्यन्त श्रेष्ठ उन परब्रह्म पुरुषोत्तमको प्राप्त हो जाता है, जो सम्पूर्ण जगत्‌को अपनी शक्तिके किसी एक अंशमें धारण किये हुए हैं और सम्पूर्ण विश्वमें व्याप्त हैं तथा जो

अन्तर्यामीरूपसे सबके हृदयमें विराजमान हैं। इसी विषयको स्पष्ट करनेवाले ये दो आगे कहे हुए श्लोक हैं॥ ५॥

तिस्रो मात्रा मृत्युमत्यः प्रयुक्ता
अन्योन्यसक्ता अनविप्रयुक्ताः।
क्रियासु बाह्याभ्यन्तरमध्यमासु
सम्यक्प्रयुक्तासु न कम्पते ज्ञः॥ ६॥

तिस्रः मात्राः=ओंकारकी तीनों मात्राएँ ('अ', 'उ' तथा 'म'); **अन्योन्यसक्ताः**=एक दूसरीसे संयुक्त रहकर; **प्रयुक्ताः**=प्रयुक्त की गयी हो; **अनविप्रयुक्ताः**=या पृथक्-पृथक् एक-एक ध्येयके चिन्तनमें इनका प्रयोग किया गया हो (दोनों प्रकारसे ही वे); **मृत्युमत्यः**=मृत्युयुक्त हैं; **बाह्याभ्यन्तर-मध्यमासु**=बाहर, भीतर और बीचकी; **क्रियासु**=क्रियाओंमें; **सम्यक्प्रयुक्तासु**= पूर्णतया इन मात्राओंका प्रयोग किये जानेपर; **ज्ञः न कम्पते**=उस परमेश्वरको जाननेवाला ज्ञानी विचलित नहीं होता॥ ६॥

व्याख्या—इस मन्त्रमें यह भाव दिखाया गया है कि ओंकारवाच्य परब्रह्म परमेश्वरका जो यह जगत्-रूप विराट्-स्वरूप है अर्थात् जो कुछ देखने, सुनने और समझनेमें आता है, यह उसका वास्तविक परम अविनाशी स्वरूप नहीं है, यह परिवर्तनशील है; अतः इसमें रहनेवाला जीव अमर नहीं होता। वह चाहे ऊँची-से-ऊँची योनिको प्राप्त कर ले, परंतु जन्म-मृत्युके चक्रसे नहीं छूटता। इसके एक अङ्ग पृथ्वीलोककी या पृथ्वी और अन्तरिक्ष इन दोनों लोकोंकी अथवा तीनों लोकोंको मिलाकर सम्पूर्ण जगत्की अभिलाषा रखते हुए जो उपासना करता है, जिसका इस जगत्के आत्मरूप परब्रह्म पुरुषोत्तमकी ओर लक्ष्य नहीं है, वरं जो जगत्के बाह्य स्वरूपमें ही आसक्त हो रहा है, वह उन्हें नहीं पाता, अतः बार-बार जन्मता-मरता रहता है। उन्हें तो वही साधक पा सकता है, जो अपने शरीरके बाहर, भीतर और शरीरके मध्यस्थान—हृदयदेशमें होनेवाली बाहरी, भीतरी और बीचकी समस्त क्रियाओंमें सर्वत्र ओंकारके वाच्यार्थरूप एकमात्र परब्रह्म पुरुषोत्तमको व्याप्त समझता है और

ओंकारके द्वारा उनकी उपासना करता है—उन्हें पानेकी ही अभिलाषासे ओंकारका जप, स्मरण और चिन्तन करता है, वह ज्ञानी परमात्माको पाकर फिर कभी अपनी स्थितिसे विचलित नहीं होता ॥ ६ ॥

ऋग्भिरेतं यजुर्भिरन्तरिक्षं
सामभिर्यत् तत्कवयो वेदयन्ते ।
तमोङ्कारेणैवायतनेनान्वेति विद्वान्
यत्तच्छान्तमजरममृतमभयं परं चेति ॥ ७ ॥

ऋग्भिः=(एक मात्राकी उपासनासे उपासक) ऋचाओंद्वारा; **एतम्**=इस मनुष्यलोकमें (पहुँचाया जाता है); **यजुर्भिः**=(दूसरा दो मात्राओंकी उपासना करनेवाला) यजुः श्रुतियोंद्वारा; **अन्तरिक्षम्**=अन्तरिक्षमें (चन्द्रलोकतक पहुँचाया जाता है); **सामभिः**=(पूर्णरूपसे ओंकारकी उपासना करनेवाला) सामश्रुतियोंद्वारा; **तत्**=उस ब्रह्मलोकमें (पहुँचाया जाता है); **यत्**=जिसको; **कवयः**=ज्ञानीजन; **वेदयन्ते**=जानते हैं; **विद्वान्**=विवेकशील साधक; **ओङ्कारेण एव**=केवल ओंकाररूप; **आयतनेन**=अवलम्बनके द्वारा ही; **तम्**=उस परब्रह्म पुरुषोत्तमको; **अन्वेति**=पा लेता है; **यत्**=जो; **तत्**=वह; **शान्तम्**=परम शान्त; **अजरम्**=जरारहित; **अमृतम्**=मृत्युरहित; **अभयम्**=भयरहित; **च**=और; **परम् इति**=सर्वश्रेष्ठ है ॥ ७ ॥

व्याख्या—इस मन्त्रमें तीसरे, चौथे और पाँचवें मन्त्रोंके भावका संक्षेपमें वर्णन करके ब्राह्मण-ग्रन्थके वाक्योंमें कही हुई बातका समर्थन किया गया है। भाव यह है कि एक मात्रा अर्थात् एक अङ्गको लक्ष्य बनाकर उपासना करनेवाले साधकको ऋग्वेदकी ऋचाएँ मनुष्यलोकमें पहुँचा देती हैं। दो मात्राकी उपासना करनेवालेको अर्थात् जगत्के ऊँचे-से-ऊँचे—स्वर्गीय ऐश्वर्यको लक्ष्य बनाकर ओंकारकी उपासना करनेवालेको यजुर्वेदके मन्त्र चन्द्रलोकमें ले जाते हैं और जो इन सबमें परिपूर्ण इनके आत्मस्वरूप परमेश्वरकी ओंकारके द्वारा उपासना करता है, उसको सामवेदके मन्त्र उस ब्रह्मलोकमें पहुँचा देते हैं, जिसे ज्ञानीजन जानते हैं। सम्पूर्ण रहस्यको समझनेवाले बुद्धिमान् मनुष्य

बाह्य जगत्में आसक्त न होकर ओंकारकी उपासनाद्वारा समस्त जगत्के आत्मरूप उन परब्रह्म परमात्माको पा लेते हैं, जो परम शान्त— सब प्रकारके विकारोंसे रहित हैं, जहाँ न बुढ़ापा है, न मृत्यु है, न भय है, जो अजर, अमर, निर्भय एवं सर्वश्रेष्ठ परम पुरुषोत्तम हैं ॥ ७ ॥

॥ पञ्चम प्रश्न समाप्त ॥ ५ ॥



षष्ठ प्रश्न

अथ हैनं सुकेशा भारद्वाजः पप्रच्छ—भगवन्हिरण्यनाभः कौसल्यो राजपुत्रो मामुपेत्यैतं प्रश्नमपृच्छत। षोडशकलं भारद्वाज पुरुषं वेत्थ। तमहं कुमारमब्रुवं नाहमिमं वेद यद्यहमिममवेदिषं कथं ते नावक्ष्यमिति समूलो वा एष परिशुष्यति योऽनृतमभिवदति तस्मान्नार्हाम्यनृतं वक्तुम्। स तूष्णीं रथमारुह्य प्रवव्राज। तं त्वा पृच्छामि क्वासौ पुरुष इति ॥ १ ॥

अथ=फिर; **ह एनम्**=इन प्रसिद्ध महात्मा (पिप्पलाद) से; **भारद्वाजः**=भरद्वाजपुत्र; **सुकेशा**=सुकेशाने; **पप्रच्छ**=पूछा—; **भगवन्**=भगवन्!; **कौसल्यः**=कोसलदेशीय; **राजपुत्रः**=राजकुमार; **हिरण्यनाभः**=हिरण्यनाभने; **माम् उपेत्य**=मेरे पास आकर; **एतम् प्रश्नम्**=यह प्रश्न; **अपृच्छत**=पूछा; **भारद्वाज**=हे भारद्वाज! (क्या तुम); **षोडशकलम्**=सोलह कलाओंवाले; **पुरुषम्**=पुरुषको; **वेत्थ**=जानते हो; **तम् कुमारम्**=(तब) उस राजकुमारसे; **अहम्**=मैंने; **अब्रुवम्**=कहा—; **अहम्**=मैं; **इमम्**=इसे; **न वेद**=नहीं जानता; **यदि**=यदि; **अहम्**=मैं; **इमम् अवेदिषम्**=इसे जानता होता (तो); **ते**=तुझे; **कथम् न अवक्ष्यम् इति**=क्यों नहीं बताता; **एषः वै**=वह मनुष्य अवश्य; **समूलः**=मूलके सहित; **परिशुष्यति**=सर्वथा सूख जाता है (नष्ट हो जाता है); **यः**=जो; **अनृतम्**=झूठ; **अभिवदति**=बोलता है; **तस्मात्**=इसलिये (मैं); **अनृतम्**=झूठ; **वक्तुम्**=बोलनेमें; **न अर्हामि**=समर्थ नहीं हूँ; **सः**=वह

राजकुमार (मेरा उत्तर सुनकर); **तूष्णीम्**=चुपचाप; **रथम्**=रथपर; **आरुह्य**=सवार होकर; **प्रवव्राज**=चला गया; **तम्**=उसी बातको; **त्वा पृच्छामि**=मैं आपसे पूछ रहा हूँ; **असौ**=वह (सोलह कलाओंवाला); **पुरुषः**=पुरुष; **क्व इति**=कहाँ है ? ॥ १ ॥

व्याख्या—इस मन्त्रमें सुकेशा ऋषिने अपनी अल्पज्ञता और सत्य-भाषणका महत्त्व प्रकट करते हुए सोलह कलाओंवाले पुरुषके विषयमें प्रश्न किया है। वे बोले—"भगवन्! एक बार कोसलदेशका राजकुमार हिरण्यनाभ मेरे पास आया था। उसने मुझसे पूछा—'भारद्वाज ! क्या तुम सोलह कलाओंवाले पुरुषके विषयमें जानते हो ?' मैंने उससे स्पष्ट कह दिया—'भाई ! मैं उसे नहीं जानता; जानता होता तो तुम्हें अवश्य बता देता। न बतानेका कोई कारण नहीं है। तुम अपने मनमें यह न समझना कि मैंने बहाना करके तुम्हारे प्रश्नको टाल दिया है; क्योंकि मैं झूठ नहीं बोलता। झूठ बोलनेवालेका मूलोच्छेद हो जाता है, वह इस लोकमें या परलोकमें—कहीं भी प्रतिष्ठा नहीं पा सकता' मेरी इस बातको सुनकर राजकुमार चुपचाप रथपर सवार होकर जैसे आया था, वैसे ही लौट गया। अब मैं आपके द्वारा उसी सोलह कलाओंवाले पुरुषका तत्त्व जानना चाहता हूँ; कृपया आप मुझे बतलायें कि वह कहाँ है और उसका स्वरूप क्या है" ॥ १ ॥

तस्मै स होवाच। इहैवान्तःशरीरे सोम्य स पुरुषो यस्मिन्नेताः षोडशकलाः प्रभवन्तीति ॥ २ ॥

तस्मै=उससे; **सः ह**=वे सुप्रसिद्ध महर्षि; **उवाच**=बोले; **सोम्य**=हे प्रिय !; **इह**=यहाँ; **अन्तःशरीरे**=इस शरीरके भीतर; **एव** =ही; **सः**=वह; **पुरुषः**=पुरुष है; **यस्मिन्**=जिसमें; **एताः**=ये; **षोडश**=सोलह; **कलाः**=कलाएँ; **प्रभवन्ति इति**=प्रकट होती हैं ॥ २ ॥

व्याख्या—इस मन्त्रमें उस सोलह कलाओंवाले पुरुषका संकेतमात्र किया गया है। महर्षि पिप्पलाद कहते हैं—'प्रिय सुकेशा ! जिन परमेश्वरसे सोलह कलाओंका समुदाय सम्पूर्ण जगद्रूप उनका विराट् शरीर उत्पन्न हुआ

****

है, वे परम पुरुष हमारे इस शरीरके भीतर ही विराजमान हैं; उनको खोजनेके लिये कहीं अन्यत्र नहीं जाना है। भाव यह है कि जब मनुष्यके हृदयमें परमात्माको पानेके लिये उत्कट अभिलाषा जाग्रत् हो जाती है, तब वे उसे वहीं उसके हृदयमें ही मिल जाते हैं ॥ २ ॥

सम्बन्ध—*उस परब्रह्म पुरुषोत्तमका तत्त्व समझनेके लिये संक्षेपसे सृष्टिक्रमका वर्णन करते हैं—*

स ईक्षांचक्रे। कस्मिन्नहमुत्क्रान्त उत्क्रान्तो भविष्यामि कस्मिन्वा प्रतिष्ठिते प्रतिष्ठास्यामीति ॥ ३ ॥

सः=उसने; **ईक्षांचक्रे**=विचार किया (कि); **कस्मिन्**=(शरीरसे) किसके; **उत्क्रान्ते**=निकल जानेपर; **अहम् उत्क्रान्तः**=मैं (भी) निकला हुआ (सा); **भविष्यामि**=हो जाऊँगा; **वा**=तथा; **कस्मिन् प्रतिष्ठिते**=किसके स्थित रहनेपर; **प्रतिष्ठास्यामि इति**=मैं स्थित रहूँगा ॥ ३ ॥

व्याख्या—महासर्गके आदिमें जगत्‌की रचना करनेवाले परम पुरुष परमेश्वरने विचार किया कि 'मैं जिस ब्रह्माण्डकी रचना करना चाहता हूँ, उसमें एक ऐसा कौन-सा तत्त्व डाला जाय कि जिसके न रहनेपर मैं स्वयं भी उसमें न रह सकूँ अर्थात् मेरी सत्ता स्पष्टरूपसे व्यक्त न रहे और जिसके रहनेपर मेरी सत्ता स्पष्ट प्रतीत होती रहे' ॥ ३ ॥

स प्राणमसृजत प्राणाच्छ्रद्धां खं वायुर्ज्योतिरापः पृथिवीन्द्रियं मनोऽन्नमन्नाद्वीर्यं तपो मन्त्राः कर्म लोका लोकेषु च नाम च ॥ ४ ॥

(यह सोचकर सबसे पहले) **सः**=उसने; **प्राणम् असृजत**=प्राणकी रचना की; **प्राणात् श्रद्धाम्**=प्राणके बाद श्रद्धाको (उत्पन्न किया); **खम् वायुः ज्योतिः आपः पृथिवी**=(उसके बाद क्रमशः) आकाश, वायु, तेज, जल और पृथ्वी (ये पाँच महाभूत प्रकट हुए; फिर); **मनः इन्द्रियम्**=मन (अन्तःकरण) और इन्द्रियसमुदाय (की उत्पत्ति हुई); **अन्नम्**=(उसके बाद) अन्न हुआ; **अन्नात्**=अन्नसे; **वीर्यम्**=वीर्य (की रचना हुई, फिर); **तपः**=तप; **मन्त्राः**=नाना

प्रकारके मन्त्र; **कर्म**=नाना प्रकारके कर्म; **च लोकाः**=और उनके फलरूप भिन्न-भिन्न लोकों (का निर्माण हुआ); **च**=और; **लोकेषु**=उन लोकोंमें; **नाम**=नाम (की रचना हुई) ॥ ४ ॥

व्याख्या—परब्रह्म परमेश्वरने सर्वप्रथम सबके प्राणरूप सर्वात्मा हिरण्यगर्भको बनाया। उसके बाद शुभकर्ममें प्रवृत्त करानेवाली श्रद्धा अर्थात् आस्तिक बुद्धिको प्रकट करके फिर क्रमशः शरीरके उपादानभूत आकाश, वायु, तेज, जल और पृथ्वी—इन पाँच महाभूतोंकी सृष्टि की। इन पाँच महाभूतोंका कार्य ही यह दृश्यमान सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड है। पाँच महाभूतोंके बाद परमेश्वरने मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार—इन चारोंके समुदायरूप अन्तःकरणको रचा। फिर विषयोंके ज्ञान एवं कर्मके लिये पाँच ज्ञानेन्द्रियों तथा पाँच कर्मेन्द्रियोंको उत्पन्न किया, फिर प्राणियोंके शरीरकी स्थितिके लिये अन्नकी और अन्नके परिपाकद्वारा बलकी सृष्टि की। उसके बाद अन्तःकरण और इन्द्रियोंके संयमरूप तपका प्रादुर्भाव किया। उपासनाके लिये भिन्न-भिन्न मन्त्रोंकी कल्पना की। अन्तःकरणके संयोगसे इन्द्रियोंद्वारा किये जानेवाले कर्मोंका निर्माण किया। उनके भिन्न-भिन्न फलरूप लोकोंको बनाया और उन सबके नाम-रूपोंकी रचना की। इस प्रकार सोलह कलाओंसे युक्त इस ब्रह्माण्डकी रचना करके जीवात्माके सहित परमेश्वर स्वयं इसमें प्रविष्ट हो गये; इसीलिये वे सोलह कलाओंवाले पुरुष कहलाते हैं। हमारा यह मनुष्यशरीर भी ब्रह्माण्डका ही एक छोटा-सा नमूना है, अतः परमेश्वर जिस प्रकार इस सारे ब्रह्माण्डमें हैं, उसी प्रकार हमारे इस शरीरमें भी हैं और इस शरीरमें भी वे सोलह कलाएँ वर्तमान हैं। उन हृदयस्थ परमदेव पुरुषोत्तमको जान लेना ही उस सोलह कलावाले पुरुषको जान लेना है ॥ ४ ॥

सम्बन्ध—*सर्गके आरम्भका वर्णन करके जिन परब्रह्मका लक्ष्य कराया गया, उन्हींका अब प्रलयके वर्णनसे लक्ष्य कराते हैं—*

स यथेमा नद्यः स्यन्दमानाः समुद्रायणाः समुद्रं प्राप्यास्तं गच्छन्ति भिद्येते तासां नामरूपे समुद्र इत्येवं प्रोच्यते। एवमेवास्य

परिद्रष्टुरिमाः षोडश कलाः पुरुषायणाः पुरुषं प्राप्यास्तं गच्छन्ति भिद्येते चासां नामरूपे पुरुष इत्येवं प्रोच्यते स एषोऽकलोऽमृतो भवति तदेष श्लोकः ॥ ५ ॥

सः=वह (प्रलयका दृष्टान्त) इस प्रकार है; **यथा**=जिस प्रकार; **इमाः**=ये; **नद्यः**=नदियाँ; **समुद्रायणाः स्यन्दमानाः**=समुद्रकी ओर लक्ष्य करके जाती (और) बहती हुई; **समुद्रम्**=समुद्रको; **प्राप्य**=पाकर; **अस्तम् गच्छन्ति**=(उसीमें) विलीन हो जाती हैं; **तासाम् नामरूपे**=उनके नाम और रूप; **भिद्येते**=नष्ट हो जाते हैं; **समुद्रः इति एवम्**=(फिर उनको) समुद्र इस एक नामसे ही; **प्रोच्यते**=पुकारा जाता है; **एवम् एव**=इसी प्रकार; **अस्य परिद्रष्टुः**=सब ओरसे पूर्णतया देखनेवाले इन परमेश्वरकी; **इमाः**=ये (ऊपर बतायी हुई); **षोडश कलाः**=सोलह कलाएँ; **पुरुषायणाः**=जिनका परमाधार और परमगति पुरुष है; **पुरुषम् प्राप्य**=(प्रलयकालमें) परम पुरुष परमात्माको पाकर; **अस्तम् गच्छन्ति**=(उन्हींमें) विलीन हो जाती हैं; **च**=तथा; **आसाम्**=इन सबके; **नामरूपे**=(पृथक्-पृथक्) नाम और रूप; **भिद्येते**=नष्ट हो जाते हैं; **पुरुषः इति एवम्**=(फिर उनको) 'पुरुष' इस एक नामसे ही; **प्रोच्यते**=पुकारा जाता है; **सः**=वही; **एषः**=यह; **अकलः**=कलारहित (और); **अमृतः**=अमर परमात्मा; **भवति**=है; **तत्**=उसके विषयमें; **एषः**=यह (अगला); **श्लोकः**=श्लोक है ॥ ५ ॥

व्याख्या—जिस प्रकार भिन्न-भिन्न नाम और रूपोंवाली ये बहुत-सी नदियाँ अपने उद्गमस्थान समुद्रकी ओर दौड़ती हुई समुद्रमें पहुँचकर उसीमें विलीन हो जाती हैं, उनका समुद्रसे पृथक् कोई नाम-रूप नहीं रहता—वे समुद्र ही बन जाती हैं, उसी प्रकार सर्वसाक्षी सबके आत्मरूप परमात्मासे उत्पन्न हुई ये सोलह कलाएँ (अर्थात् यह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड) प्रलयकालमें अपने परमाधार परम पुरुष परमेश्वरमें जाकर उसीमें विलीन हो जाती हैं। फिर इन सबके अलग-अलग नाम-रूप नहीं रहते। एकमात्र परम पुरुष परमेश्वरके स्वरूपमें ये तदाकार हो जाती हैं। अतः उन्हींके नामसे, उन्हींके वर्णनसे इनका

वर्णन होता है, अलग नहीं। उस समय परमात्मामें किसी प्रकारका संकल्प नहीं रहता। अतः वे समस्त कलाओंसे रहित, अमृतस्वरूप कहे जाते हैं। इस तत्त्वको समझनेवाला मनुष्य भी उन परब्रह्मको प्राप्त होकर अकल और अमर हो जाता है। इस विषयपर आगे कहा जानेवाला मन्त्र है— ॥ ५ ॥

अरा इव रथनाभौ कला यस्मिन् प्रतिष्ठिताः।
तं वेद्यं पुरुषं वेद यथा मा वो मृत्युः परिव्यथा इति ॥ ६ ॥

रथनाभौ=रथ-चक्रकी नाभिके आधारपर; **अराः इव**=जिस प्रकार अरे स्थित होते हैं (वैसे ही); **यस्मिन्**=जिसमें; **कलाः**=(ऊपर बतायी हुई सब) कलाएँ; **प्रतिष्ठिताः**=सर्वथा स्थित हैं; **तम् वेद्यम् पुरुषम्**=उस जाननेयोग्य (सबके आधारभूत) परम पुरुष परमेश्वरको; **वेद**=जानना चाहिये; **यथा**=जिससे (हे मनुष्यो!); **वः**=तुमलोगोंको; **मृत्युः**=मृत्यु; **मा परिव्यथा इति**=दुःख न दे सके ॥ ६ ॥

व्याख्या—इस मन्त्रमें सर्वाधार परमेश्वरको जाननेके लिये प्रेरणा करके उसका फल जन्म-मृत्युसे रहित हो जाना बताया गया है। वेदभगवान् मनुष्योंसे कहते हैं—'जिस प्रकार रथके पहियेमें लगे रहनेवाले सब अरे उस पहियेके मध्यस्थ नाभिमें प्रविष्ट रहते हैं, उन सबका आधार नाभि है—नाभिके बिना वे टिक ही नहीं सकते, उसी प्रकार ऊपर बतायी हुई प्राण आदि सोलह कलाओंके जो आधार हैं, ये सब कलाएँ जिनके आश्रित हैं, जिनसे उत्पन्न होती हैं और जिनमें विलीन हो जाती हैं, वे ही जाननेयोग्य परब्रह्म परमेश्वर हैं। उन सर्वाधार परमात्माको जानना चाहिये। उन्हें जान लेनेके बाद तुम्हें मौतका डर नहीं रहेगा, फिर मृत्यु तुमको इस जन्म-मृत्युयुक्त संसारमें डालकर दुःखी नहीं कर सकेगी। तुमलोग सदाके लिये अमर हो जाओगे ॥ ६ ॥

तान्होवाचैतावदेवाहमेतत्परं ब्रह्म वेद। नातः परमस्तीति ॥ ७ ॥

ह=(तत्पश्चात्) उन प्रसिद्ध महर्षि पिप्पलादने; **तान् उवाच**=उन सबसे कहा; **एतत्**=इस; **परम् ब्रह्म**=परम ब्रह्मको; **अहम्**=मैं; **एतावत्**=इतना; **एव**=ही; **वेद**=जानता हूँ; **अतः परम्**=इससे पर (उत्कृष्ट तत्त्व); **न**=नहीं; **अस्ति इति**=है ॥ ७ ॥

व्याख्या—इतना उपदेश करनेके बाद महर्षि पिप्पलादने परम भाग्यवान् सुकेशा आदि छहों ऋषियोंको सम्बोधन करके कहा—'ऋषियो ! इन परब्रह्म परमेश्वरके विषयमें मैं इतना ही जानता हूँ। इनसे पर अर्थात् श्रेष्ठ अन्य कुछ भी नहीं है। मैंने तुमलोगोंसे उनके विषयमें जो कुछ कहना था, सब कह दिया' ॥ ७ ॥

सम्बन्ध—*अन्तमें कृतज्ञता प्रकट करते हुए वे सुकेशा आदि मुनिगण महर्षिको बार-बार प्रणाम करते हुए कहते हैं*—

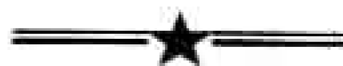
ते तमर्चयन्तस्त्वं हि नः पिता योऽस्माकमविद्यायाः परं पारं तारयसीति नमः परमऋषिभ्यो नमः परमऋषिभ्यः ॥ ८ ॥

ते=उन छहों ऋषियोंने; **तम् अर्चयन्तः**=पिप्पलादकी पूजा की (और कहा); **त्वम्**=आप; **हि**=ही; **नः**=हमारे; **पिता**=पिता (हैं); **यः**=जिन्होंने; **अस्माकम्**=हमलोगोंको; **अविद्यायाः परम् पारम्**=अविद्याके दूसरे पार; **तारयसि इति**=पहुँचा दिया है; **नमः परमऋषिभ्यः**=आप परम ऋषिको नमस्कार है; **नमः परमऋषिभ्यः**=परम ऋषिको नमस्कार है ॥ ८ ॥

व्याख्या—इस प्रकार आचार्य पिप्पलादसे ब्रह्मका उपदेश पाकर उन छहों ऋषियोंने पिप्पलादकी पूजा की और कहा—'भगवन् ! आप ही हमारे वास्तविक पिता हैं, जिन्होंने हमें इस संसार-समुद्रके पार पहुँचा दिया। ऐसे गुरुसे बढ़कर दूसरा कोई हो ही कैसे सकता है। आप परम ऋषि हैं, ज्ञानस्वरूप हैं। आपको नमस्कार है, नमस्कार है, बार-बार नमस्कार है। अन्तिम वाक्यकी पुनरावृत्ति ग्रन्थकी समाप्ति सूचित करनेके लिये है ॥ ८ ॥

॥ षष्ठ प्रश्न समाप्त ॥ ६ ॥

॥ अथर्ववेदीय प्रश्नोपनिषद् समाप्त ॥

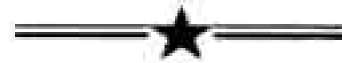


शान्तिपाठ

ॐ भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः ।
स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवाँसस्तनूभिर्व्यशेम देवहितं यदायुः ॥
स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः ।
स्वस्ति नस्तार्क्ष्यो अरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु* ॥

ॐ शान्तिः ! शान्तिः !! शान्तिः !!!

इसका अर्थ इस उपनिषद्के आरम्भमें दिया जा चुका है।



---

* यजुर्वेद २५। १९—२१ तथा ऋग्वेद १०। ८९। ६,८।

॥ ॐ श्रीपरमात्मने नमः ॥

मुण्डकोपनिषद्

यह उपनिषद् अथर्ववेदकी शौनकी शाखामें है।

शान्तिपाठ

ॐ भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः।
स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवाँ सस्तनूभिर्व्यशेम देवहितं यदायुः॥
स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः।
स्वस्ति नस्तार्क्ष्यो अरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु॥
ॐ शान्तिः! शान्तिः!! शान्तिः!!!

देवाः=हे देवगण !; [**वयम्**] **यजत्राः** [**सन्तः**]=हम भगवान्का यजन (आराधन) करते हुए; **कर्णेभिः**=कानोंसे; **भद्रम्**=कल्याणमय वचन; **शृणुयाम**=सुनें; **अक्षभिः**=नेत्रोंसे; **भद्रम्**=कल्याण (ही); **पश्येम**=देखें; **स्थिरैः**=सुदृढ़; **अङ्गैः**=अङ्गों; **तनूभिः**=एवं शरीरोंसे; **तुष्टुवांसः** [**वयम्**]=भगवान्की स्तुति करते हुए हमलोग; **यत्**=जो; **आयुः**=आयु; **देवहितम्**=आराध्यदेव परमात्माके काम आ सके; [**तत्**]=उसका; **व्यशेम**=उपभोग करें; **वृद्धश्रवाः**=सब ओर फैले हुए सुयशवाले; **इन्द्रः**=इन्द्र; **नः**=हमारे लिये; **स्वस्ति दधातु**=कल्याणका पोषण करें; **विश्ववेदाः**=सम्पूर्ण विश्वका ज्ञान रखनेवाले; **पूषा**=पूषा; **नः**=हमारे लिये; **स्वस्ति** [**दधातु**]=कल्याणका पोषण करें; **अरिष्टनेमिः**=अरिष्टोंको मिटानेके लिये चक्रसदृश शक्तिशाली; **तार्क्ष्यः**=गरुड़देव; **नः**=हमारे लिये; **स्वस्ति** [**दधातु**]=कल्याणका पोषण करें; [**तथा**]=तथा; **बृहस्पतिः**=(बुद्धिके स्वामी) बृहस्पति भी; **नः**=हमारे लिये; **स्वस्ति** [**दधातु**]=कल्याण करें; **ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः**=परमात्मन्! हमारे त्रिविध तापकी शान्ति हो।

व्याख्या—गुरुके यहाँ अध्ययन करनेवाले शिष्य अपने गुरु, सहपाठी तथा मानवमात्रका कल्याण-चिन्तन करते हुए देवताओंसे प्रार्थना करते हैं कि 'हे देवगण ! हम अपने कानोंसे शुभ— कल्याणकारी वचन ही सुनें। निन्दा, चुगली, गाली या दूसरी-दूसरी पापकी बातें हमारे कानोंमें न पड़ें और हमारा अपना जीवन यजनपरायण हो—हम सदा भगवान्‌की आराधनामें ही लगे रहें। न केवल कानोंसे सुनें, नेत्रोंसे भी हम सदा कल्याणका ही दर्शन करें। किसी अमङ्गलकारी अथवा पतनकी ओर ले जानेवाले दृश्यकी ओर हमारी दृष्टिका आकर्षण कभी न हो। हमारे शरीर, हमारा एक-एक अवयव सुदृढ़ एवं सुपुष्ट हों—वह भी इसलिये कि हम उनके द्वारा भगवान्‌का स्तवन करते रहें। हमारी आयु भोग-विलास या प्रमादमें न बीते। हमें ऐसी आयु मिले, जो भगवान्‌के कार्यमें आ सके। [देवता हमारी प्रत्येक इन्द्रियमें व्याप्त रहकर उसका संरक्षण और संचालन करते हैं। उनके अनुकूल रहनेसे हमारी इन्द्रियाँ सुगमतापूर्वक सन्मार्गमें लगी रह सकती हैं; अतः उनसे प्रार्थना करनी उचित ही है।] जिनका सुयश सब ओर फैला है, वे देवराज इन्द्र, सर्वज्ञ पूषा, अरिष्टनिवारक तार्क्ष्य (गरुड़) और बुद्धिके स्वामी बृहस्पति—ये सभी देवता भगवान्‌की दिव्य विभूतियाँ हैं। ये सदा हमारे कल्याणका पोषण करें। इनकी कृपासे हमारे सहित प्राणिमात्रका कल्याण होता रहे। आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक—सभी प्रकारके तापोंकी शान्ति हो।

प्रथम मुण्डक

प्रथम खण्ड

ॐ ब्रह्मा देवानां प्रथमः सम्बभूव
विश्वस्य कर्ता भुवनस्य गोप्ता।
स ब्रह्मविद्यां सर्वविद्याप्रतिष्ठा-
मथर्वाय ज्येष्ठपुत्राय प्राह॥ १॥

'ॐ' इस परमेश्वरके नामका स्मरण करके उपनिषद्‌का आरम्भ किया जाता

****

है। इसके द्वारा यहाँ यह सूचित किया गया है कि मनुष्यको प्रत्येक कार्यके आरम्भमें ईश्वरका स्मरण तथा उनके नामका उच्चारण अवश्य करना चाहिये।

विश्वस्य कर्ता=सम्पूर्ण जगत्के रचयिता (और); **भुवनस्य गोप्ता**=सब लोकोंकी रक्षा करनेवाले; **ब्रह्मा**=(चतुर्मुख) ब्रह्माजी; **देवानाम्**=सब देवताओंमें; **प्रथमः**=पहले; **सम्बभूव**=प्रकट हुए; **सः**=उन्होंने; **ज्येष्ठपुत्राय अथर्वाय**=सबसे बड़े पुत्र अथर्वाको; **सर्वविद्याप्रतिष्ठाम्**=समस्त विद्याओंकी आधारभूता; **ब्रह्मविद्याम् प्राह**=ब्रह्मविद्याका भलीभाँति उपदेश किया॥ १॥

व्याख्या—सर्वशक्तिमान् परब्रह्म परमेश्वरसे देवताओंमें सर्वप्रथम ब्रह्मा प्रकट हुए। फिर इन्होंने ही सब देवताओं, महर्षियों और मरीचि आदि प्रजापतियोंको उत्पन्न किया। साथ ही, समस्त लोकोंकी रचना भी की तथा उन सबकी रक्षाके सुदृढ़ नियम आदि बनाये। उनके सबसे बड़े पुत्र महर्षि अथर्वा थे; उन्हींको सबसे पहले ब्रह्माजीने ब्रह्मविद्याका उपदेश दिया था। जिस विद्यासे ब्रह्मके पर और अपर—दोनों स्वरूपोंका पूर्णतया ज्ञान हो, उसे ब्रह्मविद्या कहते हैं; यह सम्पूर्ण विद्याओंकी आश्रय है॥ १॥

अथर्वणे यां प्रवदेत ब्रह्मा-
थर्वा तां पुरोवाचाङ्गिरे ब्रह्मविद्याम्।
स भारद्वाजाय सत्यवहाय
प्राह भारद्वाजोऽङ्गिरसे परावराम्॥ २॥

ब्रह्मा=ब्रह्माने; **याम्**=जिस विद्याका; **अथर्वणे**=अथर्वाको; **प्रवदेत**=उपदेश दिया था; **ताम् ब्रह्मविद्याम्**=उसी ब्रह्मविद्याको; **अथर्वा**=अथर्वाने; **पुरा**=पहले; **अङ्गिरे**=अङ्गी ऋषिसे; **उवाच**=कहा था; **सः**=उन अङ्गी ऋषिने; **भारद्वाजाय**=भरद्वाजगोत्री; **सत्यवहाय**=सत्यवह नामक ऋषिको; **प्राह**=बतलायी; **भारद्वाजः**=भारद्वाजने; **परावराम्**=पहलेवालोंसे पीछेवालोंको प्राप्त हुई उस परम्परागत विद्याको; **अङ्गिरसे**=अङ्गिरा नामक ऋषिसे; **[प्राह]**=कहा॥ २॥

व्याख्या—अथर्वा ऋषिको जो ब्रह्मविद्या ब्रह्मासे मिली थी, वही ब्रह्मविद्या उन्होंने अङ्गी ऋषिको बतलायी और अङ्गीने भरद्वाजगोत्रमें उत्पन्न

सत्यवह नामक ऋषिको कही। भारद्वाज ऋषिने परम्परासे चली आती हुई ब्रह्मके पर और अपर—दोनों स्वरूपोंका ज्ञान करानेवाली इस ब्रह्मविद्याका उपदेश अङ्गिरा नामक ऋषिको दिया॥ २॥

शौनको ह वै महाशालोऽङ्गिरसं विधिवदुपसन्नः पप्रच्छ। कस्मिन्नु भगवो विज्ञाते सर्वमिदं विज्ञातं भवतीति॥ ३॥

ह=विख्यात है (कि); **शौनकः वै**=शौनक नामसे प्रसिद्ध मुनि; **महाशालः**=जो अति बृहत् विद्यालय (ऋषिकुल) के अधिष्ठाता थे; **विधिवत्**=शास्त्रविधिके अनुसार; **अङ्गिरसम् उपसन्नः**=महर्षि अङ्गिराके पास आये (और उनसे); **पप्रच्छ**=(विनयपूर्वक) पूछा; **भगवः**=भगवन्!; **नु**=निश्चयपूर्वक; **कस्मिन् विज्ञाते**=किसके जान लिये जानेपर; **इदम्**=यह; **सर्वम्**=सब कुछ; **विज्ञातम्**=जाना हुआ; **भवति**=हो जाता है; **इति**=यह (मेरा प्रश्न है)॥ ३॥

व्याख्या—शौनक नामसे प्रसिद्ध एक महर्षि थे, जो बड़े भारी विश्वविद्यालयके अधिष्ठाता थे; पुराणोंके अनुसार उनके ऋषिकुलमें अट्ठासी हजार ऋषि रहते थे। वे उपर्युक्त ब्रह्मविद्याको जाननेके लिये शास्त्रविधिके अनुसार हाथमें समिधा लेकर श्रद्धापूर्वक महर्षि अङ्गिराके पास आये। उन्होंने अत्यन्त विनयपूर्वक महर्षिसे पूछा—'भगवन्! जिसको भलीभाँति जान लेनेपर यह जो कुछ देखने, सुनने और अनुमान करनेमें आता है, सब-का-सब जान लिया जाता है, वह परम तत्त्व क्या है? कृपया बतलाइये कि उसे कैसे जाना जाय?॥ ३॥

तस्मै स होवाच। द्वे विद्ये वेदितव्ये इति ह स्म यद्ब्रह्मविदो वदन्ति परा चैवापरा च॥ ४॥

तस्मै=उन शौनक मुनिसे; **सः ह**=वे विख्यात महर्षि अङ्गिरा; **उवाच**=बोले; **ब्रह्मविदः**=ब्रह्मको जाननेवाले; **इति**=इस प्रकार; **ह**=निश्चयपूर्वक; **वदन्ति स्म यत्**=कहते आये हैं कि; **द्वे विद्ये**=दो विद्याएँ; **एव**=ही; **वेदितव्ये**=जाननेयोग्य हैं; **परा**=एक परा; **च**=और; **अपरा**=दूसरी अपरा; **च**=भी॥ ४॥

व्याख्या—इस प्रकार शौनकके पूछनेपर महर्षि अङ्गिरा बोले—'शौनक ! ब्रह्मको जाननेवाले महर्षियोंका कहना है कि मनुष्यके लिये जानने-योग्य दो विद्याएँ हैं—एक तो परा और दूसरी अपरा ॥ ४ ॥

तत्रापरा ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्ववेदः शिक्षा कल्पो व्याकरणं निरुक्तं छन्दो ज्योतिषमिति। अथ परा यया तदक्षरमधिगम्यते ॥ ५ ॥

तत्र=उन दोनोंमेंसे; **ऋग्वेदः**=ऋग्वेद; **यजुर्वेदः**=यजुर्वेद; **सामवेदः**=सामवेद (तथा); **अथर्ववेदः**=अथर्ववेद; **शिक्षा**=शिक्षा; **कल्पः**=कल्प; **व्याकरणम्**=व्याकरण; **निरुक्तम्**=निरुक्त; **छन्दः**=छन्द; **ज्योतिषम्**=ज्योतिष; **इति अपरा**=ये (सब तो) अपरा विद्या (के अन्तर्गत हैं); **अथ**=तथा; **यया**=जिससे; **तत्**=वह; **अक्षरम्**=अविनाशी परब्रह्म; **अधिगम्यते**=तत्त्वसे जाना जाता है; **[सा]**=वह; **परा**=परा विद्या (है) ॥ ५ ॥

व्याख्या—उन दोनोंमेंसे जिसके द्वारा इस लोक और परलोकसम्बन्धी भोगों तथा उनकी प्राप्तिके साधनोंका ज्ञान प्राप्त किया जाता है, जिसमें भोगोंकी स्थिति, भोगोंके उपभोग करनेके प्रकार, भोग-सामग्रीकी रचना और उनको उपलब्ध करनेके नाना साधन आदिका वर्णन है, वह तो अपरा विद्या है; जैसे ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद—ये चारों वेद। इनमें नाना प्रकारके यज्ञोंकी विधिका और उनके फलका विस्तारपूर्वक वर्णन है। जगत्के सभी पदार्थोंका एवं विषयोंका वेदोंमें भलीभाँति वर्णन किया गया है। यह अवश्य है कि इस समय वेदकी सब शाखाएँ उपलब्ध नहीं हैं और उनमें वर्णित विविध विज्ञानसम्बन्धी बातोंको समझनेवाले भी नहीं हैं। वेदोंका पाठ अर्थात् यथार्थ उच्चारण करनेकी विधिका उपदेश 'शिक्षा' है। जिसमें यज्ञ-याग आदिकी विधि बतलायी गयी है, उसे 'कल्प' कहते हैं (गृह्यसूत्र आदिकी गणना कल्पमें ही है)। वैदिक और लौकिक शब्दोंके अनुशासनका—प्रकृति-प्रत्यय-विभागपूर्वक शब्दसाधनकी प्रक्रिया, शब्दार्थबोधके प्रकार एवं शब्दप्रयोग आदिके नियमोंके उपदेशका नाम 'व्याकरण' है। वैदिक शब्दोंका

जो कोष है जिसमें अमुक पद अमुक वस्तुका वाचक है—यह बात कारणसहित बतायी गयी है, उसको 'निरुक्त' कहते हैं। वैदिक छन्दोंकी जाति और भेद बतलानेवाली विद्या 'छन्द' कहलाती है। ग्रह और नक्षत्रोंकी स्थिति, गति और उनके साथ हमारा क्या सम्बन्ध है—इन सब बातोंपर जिसमें विचार किया गया है, वह 'ज्योतिष' विद्या है। इस प्रकार चार वेद और छः वेदाङ्ग—इन दसका नाम अपरा विद्या है; और जिसके द्वारा परब्रह्म अविनाशी परमात्माका तत्त्वज्ञान होता है, वह परा विद्या है। उसका वर्णन भी वेदोंमें ही है, अतः उतने अंशको छोड़कर अन्य सब वेद और वेदाङ्गोंको अपरा विद्याके अन्तर्गत समझना चाहिये॥ ५॥

सम्बन्ध—*ऊपर बतलायी हुई परा विद्याके द्वारा जिसका ज्ञान होता है, वह अविनाशी ब्रह्म कैसा है—इस जिज्ञासापर कहते हैं—*

यत्तदद्रेश्यमग्राह्यमगोत्रमवर्णमचक्षुःश्रोत्रं तदपाणिपादम्। नित्यं विभुं सर्वगतं सुसूक्ष्मं तदव्ययं यद्भूतयोनिं परिपश्यन्ति धीराः॥ ६॥

तत्=वह; **यत्**=जो; **अद्रेश्यम्**=जाननेमें न आनेवाला; **अग्राह्यम्**=पकड़नेमें न आनेवाला; **अगोत्रम्**=गोत्र आदिसे रहित; **अवर्णम्**=रंग और आकृतिसे रहित; **अचक्षुःश्रोत्रम्**=नेत्र, कान आदि ज्ञानेन्द्रियोंसे (भी) रहित; **अपाणिपादम्**=(और) हाथ, पैर आदि कर्मेन्द्रियोंसे (भी) रहित है; **[तथा]**=तथा; **तत्**=वह; **यत्**=जो; **नित्यम्**=नित्य; **विभुम्**=सर्वव्यापी; **सर्वगतम्**=सबमें फैला हुआ; **सुसूक्ष्मम्**=अत्यन्त सूक्ष्म (और); **अव्ययम्**=अविनाशी परब्रह्म है; **तत्**=उस; **भूतयोनिम्**=समस्त प्राणियोंके परम कारणको; **धीराः**=ज्ञानीजन; **परिपश्यन्ति**=सर्वत्र परिपूर्ण देखते हैं॥ ६॥

व्याख्या—इस मन्त्रमें परब्रह्म परमेश्वरके निराकार स्वरूपका वर्णन किया गया है। सारांश यह है कि वे परब्रह्म परमेश्वर ज्ञानेन्द्रियोंद्वारा जाननेमें नहीं आते, न कर्मेन्द्रियोंद्वारा पकड़नेमें ही आते हैं। वे गोत्र आदि उपाधियोंसे रहित तथा ब्राह्मण आदि वर्णगतभेदसे एवं रंग और आकृतिसे भी सर्वथा

रहित हैं; वे नेत्र, कान आदि ज्ञानेन्द्रियोंसे और हाथ, पैर आदि कर्मेन्द्रियोंसे भी रहित हैं। तथा वे अत्यन्त सूक्ष्म, व्यापक, अन्तरात्मारूपसे सबमें फैले हुए और कभी नाश न होनेवाले सर्वथा नित्य हैं। समस्त प्राणियोंके उन परम कारणको ज्ञानीजन सर्वत्र परिपूर्ण देखते हैं॥ ६॥

सम्बन्ध—*वे जगदात्मा परमेश्वर समस्त भूतोंके परम कारण कैसे हैं, सम्पूर्ण जगत् उनसे किस प्रकार उत्पन्न होता है, इस जिज्ञासापर कहते हैं—*

यथोर्णनाभिः सृजते गृह्णते च
यथा पृथिव्यामोषधयः सम्भवन्ति।
यथा सतः पुरुषात्केशलोमानि
तथाक्षरात्सम्भवतीह विश्वम्॥ ७॥

यथा=जिस प्रकार; **ऊर्णनाभिः**=मकड़ी; **सृजते**=(जालेको) बनाती है; **च**= और; **गृह्णते**=निगल जाती है (तथा); **यथा**=जिस प्रकार; **पृथिव्याम्**=पृथ्वीमें; **ओषधयः**=नाना प्रकारकी ओषधियाँ; **सम्भवन्ति**=उत्पन्न होती हैं (और); **यथा**= जिस प्रकार; **सतः पुरुषात्**=जीवित मनुष्यसे; **केशलोमानि**=केश और रोएँ (उत्पन्न होते हैं); **तथा**=उसी प्रकार; **अक्षरात्**=अविनाशी परब्रह्मसे; **इह**=यहाँ (इस सृष्टिमें); **विश्वम्**=सब कुछ; **सम्भवति**=उत्पन्न होता है॥ ७॥

व्याख्या—इस मन्त्रमें तीन दृष्टान्तोंद्वारा यह बात समझायी गयी है कि परब्रह्म परमेश्वर ही इस जड-चेतनात्मक सम्पूर्ण जगत्‌के निमित्त और उपादान कारण हैं। पहले मकड़ीके दृष्टान्तसे यह बात कही गयी है कि जिस प्रकार मकड़ी अपने पेटमें स्थित जालेको बाहर निकालकर फैलाती है और फिर उसे निगल जाती है, उसी प्रकार वह परब्रह्म परमेश्वर अपने अंदर सूक्ष्मरूपसे लीन हुए जड-चेतनरूप जगत्‌को सृष्टिके आरम्भमें नाना प्रकारसे उत्पन्न करके फैलाते हैं और प्रलयकालमें पुनः उसे अपनेमें लीन कर लेते हैं (गीता ९।७-८)। दूसरे उदाहरणसे यह बात समझायी है कि जिस प्रकार पृथ्वीमें जैसे-जैसे अन्न, तृण, वृक्ष, लता आदि ओषधियोंके बीज पड़ते हैं, उसी प्रकारकी भिन्न-भिन्न भेदोंवाली ओषधियाँ वहाँ उत्पन्न हो जाती हैं—उसमें

पृथ्वीका कोई पक्षपात नहीं है, उसी प्रकार जीवोंके विभिन्न कर्मरूप बीजोंके अनुसार ही भगवान् उनको भिन्न-भिन्न योनियोंमें उत्पन्न करते हैं, अतः उनमें किसी प्रकारकी विषमता और निर्दयताका दोष नहीं है (ब्रह्मसूत्र २ । १ । ३४)। तीसरे मनुष्य-शरीरके उदाहरणसे यह बात समझायी गयी है कि जिस प्रकार मनुष्यके जीवित शरीरसे सर्वथा विलक्षण केश, रोएँ और नख अपने-आप उत्पन्न होते और बढ़ते रहते हैं—उसके लिये उसको कोई कार्य नहीं करना पड़ता, उसी प्रकार परब्रह्म परमेश्वरसे यह जगत् स्वभावसे ही समयपर उत्पन्न हो जाता है और विस्तारको प्राप्त होता है; इसके लिये भगवान्‌को कोई प्रयत्न नहीं करना पड़ता, इसीलिये भगवान्‌ने गीतामें कहा है कि 'मैं इस जगत्‌को बनानेवाला होनेपर भी अकर्ता ही हूँ' (४ । १३), 'उदासीनकी तरह स्थित रहनेवाला मुझ परमेश्वरको वे कर्म लिप्त नहीं करते' (९ । ९) इत्यादि ॥ ७ ॥

सम्बन्ध—*अब संक्षेपमें जगत्‌की उत्पत्तिका क्रम बतलाते हैं*—

तपसा चीयते ब्रह्म ततोऽन्नमभिजायते ।
अन्नात्प्राणो मनः सत्यं लोकाः कर्मसु चामृतम् ॥ ८ ॥

ब्रह्म=परब्रह्म; **तपसा**=संकल्परूप तपसे; **चीयते**=उपचय (वृद्धि) को प्राप्त होता है; **ततः**=उससे; **अन्नम्**=अन्न; **अभिजायते**=उत्पन्न होता है; **अन्नात्**=अन्नसे (क्रमशः); **प्राणः**=प्राण; **मनः**=मन; **सत्यम्**=सत्य (पाँच महाभूत); **लोकाः**=समस्त लोक (और कर्म); **च**=तथा; **कर्मसु**=कर्मोंसे; **अमृतम्**=अवश्यम्भावी सुख-दुःखरूप फल उत्पन्न होता है ॥ ८ ॥

व्याख्या—जब जगत्‌की रचनाका समय आता है, उस समय परब्रह्म परमेश्वर अपने संकल्परूप तपसे वृद्धिको प्राप्त होते हैं, अर्थात् उनमें विविध रूपोंवाली सृष्टिके निर्माणका संकल्प उठता है। जीवोंके कर्मानुसार उन परब्रह्म पुरुषोत्तममें जो सृष्टिके आदिमें स्फुरणा होती है, वही मानो उनका तप है; उस स्फुरणाके होते ही भगवान्, जो पहले अत्यन्त सूक्ष्मरूपमें रहते हैं, (जिसका वर्णन छठे मन्त्रमें आ चुका है) उसकी अपेक्षा स्थूल हो जाते हैं अर्थात् वे सृष्टिकर्ता ब्रह्माका रूप धारण कर लेते हैं। ब्रह्मासे सब प्राणियोंकी उत्पत्ति और

वृद्धि करनेवाला अन्न उत्पन्न होता है। फिर अन्नसे क्रमशः प्राण, मन, कार्यरूप आकाशादि पाँच महाभूत, समस्त प्राणी और उनके वासस्थान, उनके भिन्न-भिन्न कर्म और उन कर्मोंसे उनका अवश्यम्भावी सुख-दुःखरूप फल—इस प्रकार यह सम्पूर्ण जगत् उत्पन्न होता है॥ ८॥

सम्बन्ध—*अब परमेश्वरकी महिमाका वर्णन करते हुए इस प्रकरणका उपसंहार करते हैं—*

यः सर्वज्ञः सर्वविद्यस्य ज्ञानमयं तपः।
तस्मादेतद्ब्रह्म नाम रूपमन्नं च जायते॥ ९॥

यः=जो; **सर्वज्ञः**=सर्वज्ञ (तथा); **सर्ववित्**=सबको जाननेवाला (है); **यस्य**=जिसका; **ज्ञानमयम्**=ज्ञानमय; **तपः**=तप (है); **तस्मात्**=उसी परमेश्वरसे; **एतत्**=यह; **ब्रह्म**=विराट्स्वरूप जगत्; **च**=तथा; **नाम**=नाम; **रूपम्**=रूप (और); **अन्नम्**=भोजन; **जायते**=उत्पन्न होते हैं॥ ९॥

व्याख्या—वे सम्पूर्ण जगत्के कारणभूत परम पुरुष परमेश्वर साधारण-रूपसे तथा विशेषरूपसे भी सबको भलीभाँति जानते हैं, उन परब्रह्मका एकमात्र ज्ञान ही तप है। उन्हें साधारण मनुष्योंकी भाँति जगत्की उत्पत्तिके लिये कष्ट-सहनरूप तप नहीं करना पड़ता। उन सर्वशक्तिमान् परब्रह्म परमेश्वरके संकल्पमात्रसे ही यह प्रत्यक्ष दीखनेवाला विराट्स्वरूप जगत् (जिसे अपर ब्रह्म कहते हैं) अपने-आप प्रकट हो जाता है और समस्त प्राणियों तथा लोकोंके नाम, रूप और आहार आदि भी उत्पन्न हो जाते हैं॥ ९॥

शौनक ऋषिने यह पूछा था कि 'किसको जाननेसे यह सब कुछ जान लिया जाता है?' इसके उत्तरमें समस्त जगत्के परम कारण परब्रह्म परमात्मासे जगत्की उत्पत्ति बतलाकर संक्षेपमें यह बात समझायी गयी कि 'उन सर्व-शक्तिमान्, सर्वज्ञ, सबके कर्ता-धर्ता परमेश्वरको जान लेनेपर यह सब कुछ ज्ञात हो जाता है'॥ ९॥

॥ प्रथम खण्ड समाप्त॥ १॥



द्वितीय खण्ड

सम्बन्ध—*पहले खण्डके चौथे मन्त्रमें परा और अपरा—इन दो विद्याओंको जाननेयोग्य बताया था, उनमेंसे अब इस खण्डमें अपरा विद्याका स्वरूप और फल बतलाकर परा विद्याकी जिज्ञासा उत्पन्न की जाती है—*

तदेतत्सत्यं मन्त्रेषु कर्माणि कवयो यान्यपश्यंस्तानि त्रेतायां बहुधा संततानि। तान्याचरथ नियतं सत्यकामा एष वः पन्थाः सुकृतस्य लोके ॥ १ ॥

तत्=वह; **एतत्**=यह; **सत्यम्**=सत्य है कि; **कवयः**=बुद्धिमान् ऋषियोंने; **यानि**=जिन; **कर्माणि**=कर्मोंको; **मन्त्रेषु**=वेद-मन्त्रोंमें; **अपश्यन्**=देखा था; **तानि**=वे; **त्रेतायाम्**=तीनों वेदोंमें; **बहुधा**=बहुत प्रकारसे; **संततानि**=व्याप्त हैं; **सत्यकामाः**=हे सत्यको चाहनेवाले मनुष्यो! (तुमलोग); **तानि**=उनका; **नियतम्**=नियमपूर्वक; **आचरथ**=अनुष्ठान करो; **लोके**=इस मनुष्य-शरीरमें; **वः**=तुम्हारे लिये; **एषः**=यही; **सुकृतस्य**=शुभकर्मकी फल-प्राप्तिका; **पन्थाः**=मार्ग है ॥ १ ॥

व्याख्या—यह सर्वथा सत्य है कि बुद्धिमान् महर्षियोंने जिन उन्नतिके साधनरूप यज्ञादि नाना प्रकारके कर्मोंको वेद-मन्त्रोंमें पहले देखा था, वे कर्म ऋक्, यजुः और साम—इन तीनों वेदोंमें बहुत प्रकारसे विस्तारपूर्वक वर्णित हैं (गीता ४। ३२)*। अतः जागतिक उन्नति चाहनेवाले मनुष्योंको उन्हें भलीभाँति जानकर नियमपूर्वक उन कर्मोंको करते रहना चाहिये। इस मनुष्य-शरीरमें यही उन्नतिका सुन्दर मार्ग है। आलस्य और प्रमादमें या भोगोंको भोगनेमें पशुओंकी भाँति जीवन बिता देना मनुष्य-शरीरके उपयुक्त नहीं है। यही इस मन्त्रका भाव है ॥ १ ॥

---

* प्रधानरूपसे वेदोंकी संख्या तीन ही मानी गयी है। जहाँ-तहाँ 'वेदत्रयी' आदि नामोंसे ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद—इन तीनका ही उल्लेख मिलता है। ऐसे स्थलोंमें चौथे अथर्ववेदको उक्त तीनोंके अन्तर्गत ही मानना चाहिये।

सम्बन्ध—*वेदोक्त अनेक प्रकारके कर्मोंमेंसे उपलक्षणरूपसे प्रधान अग्निहोत्र-कर्मका वर्णन आरम्भ करते हैं*—

यदा लेलायते ह्यर्चिः समिद्धे हव्यवाहने ।
तदाज्यभागावन्तरेणाहुतीः प्रतिपादयेत् ॥ २ ॥

यदा हि=जिस समय; **हव्यवाहने समिद्धे**=हविष्यको देवताओंके पास पहुँचानेवाली अग्निके प्रदीप्त हो जानेपर; **अर्चिः**=(उसमें) ज्वालाएँ; **लेलायते**=लपलपाने लगती हैं; **तदा**=उस समय; **आज्यभागौ अन्तरेण**=आज्यभागकी दोनों आहुतियोंके* स्थानको छोड़कर बीचमें; **आहुतीः**=अन्य आहुतियोंको; **प्रतिपादयेत्**=डाले ॥ २ ॥

व्याख्या—अधिकारी मनुष्योंको नित्यप्रति अग्निहोत्र करना चाहिये। जब देवताओंको हविष्य पहुँचानेवाली अग्नि अग्निहोत्रकी वेदीमें भलीभाँति प्रज्वलित हो जाय, उसमेंसे लपटें निकलने लगें, उस समय आज्यभागके स्थानको छोड़कर मध्यमें आहुतियाँ डालनी चाहिये। इससे यह बात भी समझायी गयी है कि जबतक अग्नि प्रदीप्त न हो, उसमेंसे लपटें न निकलने लगें तबतक या निकलकर शान्त हो जायँ, उस समय अग्निमें आहुति नहीं डालनी चाहिये। अग्निको अच्छी तरह प्रज्वलित करके ही अग्निहोत्र करना चाहिये ॥ २ ॥

सम्बन्ध—*नित्य अग्निहोत्र करनेवाले मनुष्यको उसके साथ-साथ और क्या-क्या करना चाहिये, इस जिज्ञासापर कहते हैं*—

यस्याग्निहोत्रमदर्शमपौर्णमास-
मचातुर्मास्यमनाग्रयणमतिथिवर्जितं च ।

---

* यजुर्वेदके अनुसार प्रजापतिके लिये मौनभावसे एक आहुति और इन्द्रके लिये 'आधार' नामकी दो घृताहुतियाँ देनेके पश्चात् जो अग्नि और सोम देवताओंके लिये पृथक्-पृथक् दो आहुतियाँ दी जाती हैं उनका नाम 'आज्यभाग' है। 'ॐ अग्नये स्वाहा' कहकर उत्तर-पूर्वार्धमें और 'ॐ सोमाय स्वाहा' कहकर दक्षिण-पूर्वार्धमें ये आहुतियाँ डाली जाती हैं, इनके बीचमें शेष आहुतियाँ डालनी चाहिये।

अहुतमवैश्वदेवमविधिना हुत-
मासप्तमांस्तस्य लोकान् हिनस्ति ॥ ३ ॥

यस्य=जिसका; **अग्निहोत्रम्**=अग्निहोत्र; **अदर्शम्**=दर्श नामक यज्ञसे रहित है; **अपौर्णमासम्**=पौर्णमास नामक यज्ञसे रहित है; **अचातुर्मास्यम्**=चातुर्मास्य नामक यज्ञसे रहित है; **अनाग्रयणम्**=आग्रयण कर्मसे रहित है; **च**=तथा; **अतिथिवर्जितम्**=जिसमें अतिथि सत्कार नहीं किया जाता; **अहुतम्**=जिसमें समयपर आहुति नहीं दी जाती; **अवैश्वदेवम्**=जो बलि-वैश्वदेव नामक कर्मसे रहित है; (तथा) **अविधिना हुतम्**=जिसमें शास्त्र-विधिकी अवहेलना करके हवन किया गया है; ऐसा अग्निहोत्र; **तस्य**=उस अग्निहोत्रीके; **आसप्तमान्**=सातों; **लोकान्**=पुण्यलोकोंका; **हिनस्ति**=नाश कर देता है ॥ ३ ॥

व्याख्या—नित्य अग्निहोत्र करनेवाला मनुष्य यदि दर्श* और पौर्ण-मासयज्ञ† नहीं करता या चातुर्मास्ययज्ञ‡ नहीं करता अथवा शरद् और वसन्त ऋतुओंमें की जानेवाली नवीन अन्नकी इष्टिरूप आग्रयण यज्ञ नहीं करता, यदि उसकी यज्ञशालामें अतिथियोंका विधिपूर्वक सत्कार नहीं किया जाता या वह नित्य अग्निहोत्रमें ठीक समयपर और शास्त्रविधिके अनुसार हवन नहीं करता एवं बलिवैश्वदेव कर्म नहीं करता, तो उस अग्निहोत्र करनेवाले मनुष्यके सातों लोकोंको वह अङ्गहीन अग्निहोत्र नष्ट कर देता है। अर्थात् उस यज्ञके द्वारा उसे मिलनेवाले जो पृथ्वीलोकसे लेकर सत्यलोकतक सातों लोकोंमें प्राप्त होनेयोग्य भोग हैं, उनसे वह वञ्चित रह जाता है ॥ ३ ॥

सम्बन्ध—*दूसरे मन्त्रमें यह बात कही गयी थी कि जब अग्निमें लपटें निकलने लगें तब आहुति देनी चाहिये; अतः अब उन लपटोंके प्रकार-भेद और नाम बतलाते हैं—*

---

* प्रत्येक अमावस्याको की जानेवाली इष्टि।

† प्रत्येक पूर्णिमाको की जानेवाली इष्टि।

‡ चार महीनोंमें पूरा होनेवाला एक श्रौत यागविशेष।

काली कराली च मनोजवा च
सुलोहिता या च सुधूम्रवर्णा ।
स्फुलिङ्गिनी विश्वरुची च देवी
लेलायमाना इति सप्त जिह्वाः ॥ ४ ॥

या=जो; **काली**=काली; **कराली**=कराली; **च**=तथा; **मनोजवा**= मनोजवा; **च**=और; **सुलोहिता**=सुलोहिता; **च**=तथा; **सुधूम्रवर्णा**=सुधूम्रवर्णा; **स्फुलिङ्गिनी**=स्फुलिङ्गिनी; **च**=तथा; **विश्वरुची देवी**=विश्वरुची देवी; **इति**=ये (अग्निकी); **सप्त**=सात; **लेलायमानाः**=लपलपाती हुई; **जिह्वाः**= जिह्वाएँ हैं ॥ ४ ॥

व्याख्या—काली—काले रंगवाली, कराली—अति उग्र (जिसमें आग लग जानेका डर रहता है), मनोजवा—मनकी भाँति अत्यन्त चञ्चल, सुलोहिता—सुन्दर लाली लिये हुए, सुधूम्रवर्णा—सुन्दर धूएँके-से रंगवाली, स्फुलिङ्गिनी—चिनगारियोंवाली तथा विश्वरुची देवी—सब ओरसे प्रकाशित, देदीप्यमान—इस प्रकार ये सात तरहकी लपटें मानो अग्निदेवकी हविको ग्रहण करनेके लिये लपलपाती हुई सात जिह्वाएँ हैं। अतः जब इस प्रकार अग्निदेवता आहुतिरूप भोजन ग्रहण करनेके लिये तैयार हों, उसी समय भोजनरूप आहुतियाँ प्रदान करनी चाहिये; अन्यथा अप्रज्वलित अथवा बुझी हुई अग्निमें दी हुई आहुति राखमें मिलकर व्यर्थ नष्ट हो जाती हैं ॥ ४ ॥

सम्बन्ध—*उपर्युक्त प्रकारसे प्रदीप्त अग्निमें नियमपूर्वक नित्यप्रति हवन करनेका फल बतलाते हैं—*

एतेषु यश्चरते भ्राजमानेषु
यथाकालं चाहुतयो ह्याददायन् ।
तं नयन्त्येताः सूर्यस्य रश्मयो
यत्र देवानां पतिरेकोऽधिवासः ॥ ५ ॥

यः च=जो कोई भी अग्निहोत्री; **एतेषु भ्राजमानेषु**=इन देदीप्यमान ज्वालाओंमें; **यथाकालम्**=ठीक समयपर; **चरते**=अग्निहोत्र करता है; **तम्**=उस

अग्निहोत्रीको; **हि**=निश्चय ही; **आददायन्**=अपने साथ लेकर; **एताः**=ये; **आहुतयः**=आहुतियाँ; **सूर्यस्य**=सूर्यकी; **रश्मयः [भूत्वा]**=किरणें बनकर; **नयन्ति**=(वहाँ) पहुँचा देती हैं; **यत्र**=जहाँ; **देवानाम्**=देवताओंका; **एकः**=एकमात्र; **पतिः**=स्वामी (इन्द्र); **अधिवासः**=निवास करता है ॥ ५ ॥

व्याख्या—जो कोई भी साधक पूर्वमन्त्रमें बतलायी हुई सात प्रकारकी लपटोंसे युक्त भलीभाँति प्रज्वलित अग्निमें ठीक समयपर शास्त्रविधिके अनुसार नित्यप्रति आहुति देकर अग्निहोत्र करता है, उसे मरणकालमें अपने साथ लेकर ये आहुतियाँ सूर्यकी किरणें बनकर वहाँ पहुँचा देती हैं, जहाँ देवताओंका एकमात्र स्वामी इन्द्र निवास करता है। तात्पर्य यह कि अग्निहोत्र स्वर्गके सुखोंकी प्राप्तिका अमोघ उपाय है ॥ ५ ॥

सम्बन्ध—*किस प्रकार ये आहुतियाँ सूर्य-किरणोंद्वारा यजमानको इन्द्रलोकमें ले जाती हैं—ऐसी जिज्ञासा होनेपर कहते हैं—*

एह्येहीति तमाहुतयः सुवर्चसः
सूर्यस्य रश्मिभिर्यजमानं वहन्ति।
प्रियां वाचमभिवदन्त्योऽर्चयन्त्य
एष वः पुण्यः सुकृतो ब्रह्मलोकः ॥ ६ ॥

सुवर्चसः=(वे) देदीप्यमान; **आहुतयः**=आहुतियाँ; **एहि एहि**=आओ, आओ; **एषः**=यह; **वः**=तुम्हारे; **सुकृतः**=शुभकर्मोंसे प्राप्त; **पुण्यः**=पवित्र; **ब्रह्मलोकः**=ब्रह्मलोक (स्वर्ग) है; **इति**=इस प्रकारकी; **प्रियाम्**=प्रिय; **वाचम्**=वाणी; **अभिवदन्त्यः**=बार-बार कहती हुई (और); **अर्चयन्त्यः**=उसका आदर-सत्कार करती हुई; **तम्**=उस; **यजमानम्**=यजमानको; **सूर्यस्य**=सूर्यकी; **रश्मिभिः**=रश्मियोंद्वारा; **वहन्ति**=ले जाती हैं ॥ ६ ॥

व्याख्या—उन प्रदीप्त ज्वालाओंमें दी हुई आहुतियाँ सूर्यकी किरणोंके रूपमें परिणत होकर मरणकालमें उस साधकसे कहती हैं—'आओ, आओ यह तुम्हारे शुभकर्मोंका फलस्वरूप ब्रह्मलोक अर्थात् भोगरूप सुखोंको भोगनेका स्थान स्वर्गलोक है।' इस प्रकारकी प्रिय वाणी बार-बार कहती हुई आदर-सत्कारपूर्वक

****

उसे सूर्यकी किरणोंके मार्गसे ले जाकर स्वर्गलोकमें पहुँचा देती हैं। यहाँ स्वर्गको ब्रह्मलोक कहनेका यह भाव मालूम होता है कि स्वर्गके अधिपति इन्द्र भी भगवान्‌के ही अपर स्वरूप हैं, अतः प्रकारान्तरसे ब्रह्म ही हैं॥ ६॥

सम्बन्ध—*अब सांसारिक भोगोंमें वैराग्यकी और परम आनन्दस्वरूप परमेश्वरको पानेकी अभिलाषा उत्पन्न करनेके लिये उपर्युक्त स्वर्गलोकके साधनरूप यज्ञादि सकाम कर्म और उनके फलरूप लौकिक एवं पारलौकिक भोगोंकी तुच्छता बतलाते हैं—*

प्लवा ह्येते अदृढा यज्ञरूपा
अष्टादशोक्तमवरं येषु कर्म।
एतच्छ्रेयो येऽभिनन्दन्ति मूढा
जरामृत्युं ते पुनरेवापि यन्ति॥ ७॥

हि=निश्चय ही; **एते**=ये; **यज्ञरूपाः**=यज्ञरूप; **अष्टादश प्लवाः**=अठारह नौकाएँ; **अदृढाः**=अदृढ़ (अस्थिर) हैं; **येषु**=जिनमें; **अवरम् कर्म**=नीची श्रेणीका उपासनारहित सकाम कर्म; **उक्तम्**=बताया गया है; **ये**=जो; **मूढाः**=मूर्ख; **एतत् [एव]**=यही; **श्रेयः**=कल्याणका मार्ग है (यों मानकर); **अभिनन्दन्ति**=इसकी प्रशंसा करते हैं; **ते**=वे; **पुनः अपि**=बारम्बार; **एव**=निःसंदेह; **जरामृत्युम्**=वृद्धावस्था और मृत्युको; **यन्ति**=प्राप्त होते रहते हैं॥ ७॥

व्याख्या—इस मन्त्रमें यज्ञको नौकाका रूप दिया गया है और उनकी संख्या अठारह बतलायी गयी है; इससे अनुमान होता है कि नित्य, दर्श, पौर्णमास, चातुर्मास्य आदि भेदोंसे यज्ञके अठारह प्रधान भेद होते हैं। कहना यह है कि जिनमें उपासनारहित सकाम कर्मोंका वर्णन है, ऐसी ये यज्ञरूप अठारह नौकाएँ हैं, जो कि दृढ़ नहीं हैं। इनके द्वारा संसार-समुद्रसे पार होना तो दूर रहा, इस लोकके वर्तमान दुःखरूप छोटी-सी नदीसे पार होकर स्वर्गतक पहुँचनेमें भी संदेह है; क्योंकि तीसरे मन्त्रके वर्णनानुसार किसी भी अङ्गकी कमी रह जानेपर वे साधकको स्वर्गमें नहीं पहुँचा सकतीं, बीचमें ही छिन्न-भिन्न हो जाती हैं। इसलिये ये अदृढ़ अर्थात् अस्थिर हैं। इस रहस्यको न समझकर जो मूर्खलोग इन सकाम कर्मोंको ही कल्याणका उपाय समझकर—इनके ही

फलको परम सुख मानकर इनकी प्रशंसा करते रहते हैं, उन्हें निःसंदेह बारम्बार वृद्धावस्था और मरणके दुःख भोगने पड़ते हैं ॥ ७ ॥

सम्बन्ध—*वे किस प्रकार दुःख भोगते हैं, इसका स्पष्टीकरण करते हैं—*

अविद्यायामन्तरे वर्तमानाः स्वयंधीराः पण्डितं मन्यमानाः ।
जङ्घन्यमानाः परियन्ति मूढा अन्धेनैव नीयमाना यथान्धाः ॥ ८ ॥

अविद्यायाम् अन्तरे=अविद्याके भीतर; **वर्तमानाः**=स्थित होकर (भी); **स्वयंधीराः**=अपने-आप बुद्धिमान् बननेवाले (और); **पण्डितम् मन्यमानाः**= अपनेको विद्वान् माननेवाले; **मूढाः**=वे मूर्खलोग; **जङ्घन्यमानाः**=बार-बार आघात (कष्ट) सहन करते हुए; **परियन्ति**=(ठीक वैसे ही) भटकते रहते हैं; **यथा**=जैसे; **अन्धेन एव**=अंधेके द्वारा ही; **नीयमानाः**=चलाये जानेवाले; **अन्धाः**=अंधे (अपने लक्ष्यतक न पहुँचकर बीचमें ही इधर-उधर भटकते और कष्ट भोगते रहते हैं) ॥ ८ ॥*

व्याख्या—जब अंधे मनुष्यको मार्ग दिखानेवाला भी अंधा ही मिल जाता है, तब जैसे वह अपने अभीष्ट स्थानपर नहीं पहुँच पाता, बीचमें ही ठोकरें खाता भटकता है और काँटें-कंकड़ोंसे बिंधकर या गहरे गड्ढे आदिमें गिरकर अथवा किसी चट्टान, दीवाल और पशु आदिसे टकराकर नाना प्रकारके कष्ट भोगता है, वैसे ही उन मूर्खोंको भी पशु, पक्षी, कीट, पतंग आदि विविध दुःखपूर्ण योनियोंमें एवं नरकादिमें प्रवेश करके अनन्त जन्मोंतक अनन्त यन्त्रणाओंका भोग करना पड़ता है, जो अपने-आपको ही बुद्धिमान् और विद्वान् समझते हैं; विद्या-बुद्धिके मिथ्याभिमानमें शास्त्र और महापुरुषोंके वचनोंकी कुछ भी परवा न करके उनकी अवहेलना करते हैं और प्रत्यक्ष सुखरूप प्रतीत होनेवाले भोगोंका भोग करनेमें तथा उनके उपायभूत अविद्यामय सकाम कर्मोंमें ही निरन्तर संलग्न रहकर मनुष्यजीवनका अमूल्य समय व्यर्थ नष्ट करते रहते हैं ॥ ८ ॥

---

* यह मन्त्र कठोपनिषद्में भी आया है (क० उ० १ । २ । ५) ।

सम्बन्ध—*वे लोग बारम्बार दुःखोंमें पड़कर भी चेतते क्यों नहीं, कल्याणके लिये चेष्टा क्यों नहीं करते, इस जिज्ञासापर कहते हैं—*

अविद्यायां बहुधा वर्तमाना
वयं कृतार्था इत्यभिमन्यन्ति बालाः।
यत्कर्मिणो न प्रवेदयन्ति रागात्
तेनातुराः क्षीणलोकाश्च्यवन्ते॥ ९॥

बालाः=वे मूर्खलोग; **अविद्यायाम्**=उपासनारहित सकाम कर्मोंमें; **बहुधा**=बहुत प्रकारसे; **वर्तमानाः**=वर्तते हुए; **वयम्**=हम; **कृतार्थाः**=कृतार्थ हो गये; **इति अभिमन्यन्ति**=ऐसा अभिमान कर लेते हैं; **यत्**=क्योंकि; **कर्मिणः**=वे सकाम कर्म करनेवाले लोग; **रागात्**=विषयोंकी आसक्तिके कारण; **न प्रवेदयन्ति**=कल्याणके मार्गको नहीं जान पाते; **तेन**=इस कारण; **आतुराः**=बारम्बार दुःखसे आतुर हो; **क्षीणलोकाः**=पुण्योपार्जित लोकोंसे हटाये जाकर; **च्यवन्ते**=नीचे गिर जाते हैं॥ ९॥

व्याख्या—पूर्वमन्त्रमें कहे हुए प्रकारसे जो इस लोक और परलोकके भोगोंकी प्राप्तिके लिये सांसारिक उन्नतिके साधनरूप नाना प्रकारके सकाम कर्मोंमें ही बहुत प्रकारसे लगे रहते हैं, वे अविद्यामें निमग्न अज्ञानी मनुष्य समझते हैं कि 'हमने अपने कर्तव्यका पालन कर लिया।' उन सांसारिक कर्मोंमें लगे हुए मनुष्योंकी भोगोंमें अत्यन्त आसक्ति होती है, इस कारण वे सांसारिक उन्नतिके सिवा कल्याणकी ओर दृष्टि ही नहीं डालते। उन्हें इस बातका पता ही नहीं रहता कि परमानन्दके समुद्र कोई परमात्मा हैं और मनुष्य उन्हें पा सकता है। इसलिये वे उन परमेश्वरकी प्राप्तिके लिये चेष्टा न करके बारम्बार दुःखी होते रहते हैं और पुण्यकर्मोंका फल पूरा होनेपर वे स्वर्गादि लोकोंसे नीचे गिर जाते हैं॥ ९॥

सम्बन्ध—*ऊपर कही हुई बातको ही और भी स्पष्ट करते हैं—*

इष्टापूर्तं मन्यमाना वरिष्ठं नान्यच्छ्रेयो वेदयन्ते प्रमूढाः।
नाकस्य पृष्ठे ते सुकृतेऽनुभूत्वेमं लोकं हीनतरं वा विशन्ति॥ १०॥

इष्टापूर्तम्=इष्ट और पूर्त* (सकाम) कर्मोंको ही; **वरिष्ठम्**=श्रेष्ठ; **मन्यमानाः**=माननेवाले; **प्रमूढाः**=अत्यन्त मूर्खलोग; **अन्यत्**=उससे भिन्न; **श्रेयः**=वास्तविक श्रेयको; **न वेदयन्ते**=नहीं जानते; **ते**=वे; **सुकृते**=पुण्यकर्मोंके फलस्वरूप; **नाकस्य पृष्ठे**=स्वर्गके उच्चतम स्थानमें; **अनुभूत्वा**=(जाकर श्रेष्ठ कर्मोंके फलस्वरूप) वहाँके भोगोंका अनुभव करके; **इमम् लोकम्**=इस मनुष्यलोकमें; **वा**=अथवा; **हीनतरम्**=इससे भी अत्यन्त हीन योनियोंमें; **विशन्ति**=प्रवेश करते हैं ॥ १० ॥

व्याख्या—वे अतिशय मूर्ख भोगासक्त मनुष्य इष्ट और पूर्तको अर्थात् वेद और स्मृति आदि शास्त्रोंमें सांसारिक सुखोंकी प्राप्तिके जितने भी साधन बताये गये हैं, उन्हींको सर्वश्रेष्ठ कल्याण-साधन मानते हैं। इसलिये उनसे भिन्न अर्थात् परमेश्वरका भजन, ध्यान और निष्कामभावसे कर्तव्यपालन करना एवं परमपुरुष परमात्माको जाननेके लिये तीव्र जिज्ञासापूर्वक चेष्टा करना आदि जितने भी परम कल्याणके साधन हैं, उन्हें वे नहीं जानते, उन कल्याण-साधनोंकी ओर लक्ष्यतक नहीं करते। अतः वे अपने पुण्यकर्मोंके फलरूप स्वर्गलोकतकके सुखोंको भोगकर पुण्य क्षय होनेपर पुनः इस मनुष्यलोकमें अथवा इससे भी नीची शूकर-कूकर, कीट-पतङ्ग आदि योनियोंमें या रौरवादि घोर नरकोंमें चले जाते हैं। (गीता ९। २०-२१) ॥ १० ॥

सम्बन्ध—*ऊपर बतलाये हुए सांसारिक भोगोंसे विरक्त मनुष्योंके आचार-व्यवहार और उनके फलका वर्णन करते हैं—*

तपःश्रद्धे ये ह्युपवसन्त्यरण्ये
शान्ता विद्वांसो भैक्ष्यचर्यां चरन्तः।
सूर्यद्वारेण ते विरजाः प्रयान्ति
यत्रामृतः स पुरुषो ह्यव्ययात्मा ॥ ११ ॥

---

* यज्ञ-यागादि श्रौतकर्मोंको 'इष्ट' तथा बावली, कुआँ खुदवाना और बगीचे आदि लगाना स्मृतिविहित कर्मको 'पूर्त' कहते हैं।

हि=किंतु; **ये**=जो; **अरण्ये [स्थिताः]**=वनमें रहनेवाले; **शान्ताः**=शान्तस्वभाववाले; **विद्वांसः**=विद्वान्; **भैक्ष्यचर्याम् चरन्तः**=तथा भिक्षाके लिये विचरनेवाले; **तपःश्रद्धे**=संयमरूप तप तथा श्रद्धाका; **उपवसन्ति**=सेवन करते हैं; **ते**=वे; **विरजाः**=रजोगुणरहित; **सूर्यद्वारेण**=सूर्यके मार्गसे; **[तत्र] प्रयान्ति**=वहाँ चले जाते हैं; **यत्र हि**=जहाँपर; **सः**=वह; **अमृतः**=जन्म-मृत्युसे रहित; **अव्ययात्मा**=नित्य, अविनाशी; **पुरुषः**=परम पुरुष (रहता है) ॥ ११ ॥

व्याख्या—उपर्युक्त भोगासक्त मनुष्योंसे जो सर्वथा भिन्न हैं, मनुष्य-शरीरका महत्त्व समझ लेनेके कारण जिनके अन्तःकरणमें परमात्माका तत्त्व जाननेकी और परमेश्वरको प्राप्त करनेकी इच्छा जग उठी है, वे चाहे वनमें निवास करनेवाले वानप्रस्थ हों, शान्त स्वभाववाले विद्वान् सदाचारी गृहस्थ हों या भिक्षासे निर्वाह करनेवाले ब्रह्मचारी अथवा संन्यासी हों, वे तो निरन्तर तप और श्रद्धाका ही सेवन किया करते हैं, अर्थात् अपने-अपने वर्ण, आश्रम तथा परिस्थितिके अनुसार जिस समय जो कर्तव्य होता है, उसका शास्त्रकी आज्ञाके अनुसार बिना किसी प्रकारकी कामनाके पालन करते रहते हैं और संयमपूर्वक शम-दमादि साधनोंसे सम्पन्न होकर परम श्रद्धाके साथ परमेश्वरको जानने और प्राप्त करनेके साधनोंमें लगे रहते हैं। इसलिये तम और रजोगुणके विकारोंसे सर्वथा शून्य निर्मल सत्त्वगुणमें स्थित वे सज्जन सूर्यलोकमें होते हुए वहाँ चले जाते हैं, जहाँ उनके परम प्राप्त अमृतस्वरूप नित्य अविनाशी परमपुरुष पुरुषोत्तम निवास करते हैं ॥ ११ ॥

सम्बन्ध—*उन परब्रह्म परमेश्वरको जानने और प्राप्त करनेके लिये मनुष्यको क्या करना चाहिये, इस जिज्ञासापर कहते हैं—*

परीक्ष्य लोकान् कर्मचितान् ब्राह्मणो
निर्वेदमायान्नास्त्यकृतः कृतेन।
तद्विज्ञानार्थं स गुरुमेवाभिगच्छेत्
समित्पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम् ॥ १२ ॥

कर्मचितान्=कर्मसे प्राप्त किये जानेवाले; **लोकान् परीक्ष्य**=लोकोंकी

परीक्षा करके; **ब्राह्मणः**=ब्राह्मण; **निर्वेदम्**=वैराग्यको; **आयात्**=प्राप्त हो जाय (यह समझ ले कि); **कृतेन**=किये जानेवाले कर्मोंसे; **अकृतः**=स्वतःसिद्ध नित्य परमेश्वर; **न अस्ति**=नहीं मिल सकता; **सः**=वह; **तद्विज्ञानार्थम्**=उस परब्रह्मका ज्ञान प्राप्त करनेके लिये; **समित्पाणिः**=हाथमें समिधा लेकर; **श्रोत्रियम्**=वेदको भलीभाँति जाननेवाले (और); **ब्रह्मनिष्ठम्**=परब्रह्म परमात्मामें स्थित; **गुरुम्**=गुरुके पास; **एव**=ही; **अभिगच्छेत्**=विनयपूर्वक जाय ॥ १२ ॥

व्याख्या—अपना कल्याण चाहनेवाले मनुष्यको पहले बतलाये हुए सकाम कर्मोंके फलस्वरूप इस लोक और परलोकके समस्त सांसारिक सुखोंकी भलीभाँति परीक्षा करके अर्थात् विवेकपूर्वक उनकी अनित्यता और दुःखरूपताको समझकर सब प्रकारके भोगोंसे सर्वथा विरक्त हो जाना चाहिये। यह निश्चय कर लेना चाहिये कि कर्तापनके अभिमानपूर्वक सकामभावसे किये जानेवाले कर्म अनित्य फलको देनेवाले तथा स्वयं भी अनित्य हैं। अतः जो सर्वथा अकृत है अर्थात् क्रियासाध्य नहीं है, ऐसे नित्य परमेश्वरकी प्राप्ति वे नहीं करा सकते। यह सोचकर उस जिज्ञासुको परमात्माका वास्तविक तत्त्वज्ञान प्राप्त करनेके लिये हाथमें समिधा लेकर श्रद्धा और विनयभावके सहित ऐसे सद्गुरुकी शरणमें जाना चाहिये, जो वेदोंके रहस्यको भलीभाँति जानते हों और परब्रह्म परमात्मामें स्थित हों ॥ १२ ॥

सम्बन्ध—*ऊपर बतलाये हुए लक्षणोंवाला कोई शिष्य यदि गुरुके पास आ जाय तो गुरुको क्या करना चाहिये, इस जिज्ञासापर कहते हैं—*

तस्मै स विद्वानुपसन्नाय सम्यक्
प्रशान्तचित्ताय शमान्विताय।
येनाक्षरं पुरुषं वेद सत्यं
प्रोवाच तां तत्त्वतो ब्रह्मविद्याम् ॥ १३ ॥

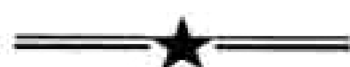
सः=वह; **विद्वान्**=ज्ञानी महात्मा; **उपसन्नाय**=शरणमें आये हुए; **सम्यक्प्रशान्तचित्ताय**=पूर्णतया शान्तचित्तवाले; **शमान्विताय**=शम-दमादि साधनयुक्त; **तस्मै**=उस शिष्यको; **ताम् ब्रह्मविद्याम्**=उस ब्रह्मविद्याका;

तत्त्वतः=तत्त्व-विवेचनपूर्वक; **प्रोवाच**=भलीभाँति उपदेश करे; **येन [सः]**= जिससे वह शिष्य; **अक्षरम्**=अविनाशी; **सत्यम्**=नित्य; **पुरुषम्**=परम पुरुषको; **वेद**=जान ले ॥ १३ ॥

व्याख्या—उन श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ महात्माको भी चाहिये कि अपनी शरणमें आये हुए ऐसे शिष्यको, जिसका चित्त पूर्णतया शान्त—निश्चिन्त हो चुका हो, सांसारिक भोगोंमें सर्वथा वैराग्य हो जानेके कारण जिसके चित्तमें किसी प्रकारकी चिन्ता, व्याकुलता या विकार नहीं रह गये हों, जो शम-दमादि साधनसम्पन्न हो अर्थात् जिसने अपने मन, बुद्धि और इन्द्रियोंको भलीभाँति वशमें कर लिया हो, उस ब्रह्मविद्याका तत्त्व-विवेचनपूर्वक भलीभाँति समझाकर उपदेश करे, जिससे वह शिष्य नित्य अविनाशी परब्रह्म पुरुषोत्तमका ज्ञान प्राप्त कर सके ॥ १३ ॥

॥ द्वितीय खण्ड समाप्त ॥ २ ॥

॥ प्रथम मुण्डक समाप्त ॥ १ ॥



द्वितीय मुण्डक

प्रथम खण्ड

सम्बन्ध—*प्रथम मुण्डकके द्वितीय खण्डमें अपर विद्याका स्वरूप और फल बतलाया तथा उसकी तुच्छता दिखाते हुए उससे विरक्त होनेकी बात कहकर परविद्या प्राप्त करनेके लिये सद्गुरुकी शरणमें जानेको कहा। अब परविद्याका वर्णन करनेके लिये प्रकरण आरम्भ करते हैं—*

तदेतत्सत्यं यथा सुदीप्तात्पावकाद् विस्फुलिङ्गाः
सहस्रशः प्रभवन्ते सरूपाः।
तथाक्षराद् विविधाः सोम्य भावाः
प्रजायन्ते तत्र चैवापियन्ति ॥ १ ॥

सोम्य=हे प्रिय !; **तत्**=वह; **सत्यम्**=सत्य; **एतत्**=यह है; **यथा**=जिस प्रकार; **सुदीप्तात् पावकात्**=प्रज्वलित अग्निमेंसे; **सरूपाः**=उसीके समान रूपवाली; **सहस्रशः**=हजारों; **विस्फुलिङ्गाः**=चिनगारियाँ; **प्रभवन्ते**=नाना प्रकारसे प्रकट होती हैं; **तथा**=उसी प्रकार; **अक्षरात्**=अविनाशी ब्रह्मसे; **विविधाः**=नाना प्रकारके; **भावाः**=भाव; **प्रजायन्ते**=उत्पन्न होते हैं; **च**=और; **तत्र एव**=उसीमें; **अपियन्ति**=विलीन हो जाते हैं* ॥ १ ॥

व्याख्या—महर्षि अङ्गिरा कहते हैं— प्रिय शौनक ! मैंने तुमको पहले परब्रह्म परमेश्वरके स्वरूपका वर्णन करते हुए (पूर्व प्रकरणके पहले खण्डमें छठे मन्त्रसे नवेंतक) जो रहस्य बतलाया था, वह सर्वथा सत्य है; अब उसीको पुनः समझाता हूँ, तुम ध्यानपूर्वक सुनो। जिस प्रकार प्रज्वलित अग्निमेंसे उसीके-जैसे रूप-रंगवाली हजारों चिनगारियाँ चारों ओर निकलती हैं, उसी प्रकार परमपुरुष अविनाशी ब्रह्मसे सृष्टिकालमें नाना प्रकारके भाव मूर्त-अमूर्त पदार्थ उत्पन्न होते हैं और प्रलयकालमें पुनः उन्हींमें लीन हो जाते हैं। यहाँ भावोंके प्रकट होनेकी बात समझानेके लिये ही अग्नि और चिनगारियोंका दृष्टान्त दिया गया है। उनके विलीन होनेकी बात दृष्टान्तसे स्पष्ट नहीं होती ॥ १ ॥

सम्बन्ध—*जिन परब्रह्म अविनाशी पुरुषोत्तमसे यह जगत् उत्पन्न होकर पुनः उन्हींमें विलीन हो जाता है, वे स्वयं कैसे हैं—इस जिज्ञासापर कहते हैं—*

दिव्यो ह्यमूर्तः पुरुषः सबाह्याभ्यन्तरो ह्यजः।
अप्राणो ह्यमनाः शुभ्रो ह्यक्षरात् परतः परः ॥ २ ॥

हि=निश्चय ही; **दिव्यः**=दिव्य; **पुरुषः**=पूर्णपुरुष; **अमूर्तः**=आकाररहित; **सबाह्याभ्यन्तरः हि**=समस्त जगत्के बाहर और भीतर भी व्याप्त; **अजः**=जन्मादि विकारोंसे अतीत; **अप्राणः**=प्राणरहित; **अमनाः**=मनरहित; **हि**=

---

* प्रथम मुण्डकके प्रथम खण्डके सातवें मन्त्रमें मकड़ी, पृथ्वी और मनुष्य-शरीरके दृष्टान्तसे जो बात कही थी, वही बात इस मन्त्रमें अग्निके दृष्टान्तसे समझायी गयी है।

होनेके कारण; **शुभ्रः**=सर्वथा विशुद्ध है (तथा); **हि**=इसीलिये; **अक्षरात्**= अविनाशी जीवात्मासे; **परतः परः**=अत्यन्त श्रेष्ठ है ॥ २ ॥

व्याख्या—वे दिव्य पुरुष परमात्मा निःसंदेह आकाररहित और समस्त जगत्‌के बाहर एवं भीतर भी परिपूर्ण हैं। वे जन्म आदि विकारोंसे रहित, सर्वथा विशुद्ध हैं; क्योंकि उनके न तो प्राण हैं, न इन्द्रियाँ हैं और न मन ही है। वे इन सबके बिना ही सब कुछ करनेमें समर्थ हैं; इसीलिये वे सर्वशक्तिमान् परमेश्वर अविनाशी जीवात्मासे अत्यन्त श्रेष्ठ—सर्वथा उत्तम हैं ॥ २ ॥

सम्बन्ध—*उपर्युक्त लक्षणोंवाले निराकार परमेश्वरसे यह साकार जगत् किस प्रकार उत्पन्न हो जाता है, इस जिज्ञासापर उनकी सर्वशक्तिमत्ताका वर्णन करते हैं—*

एतस्माज्जायते प्राणो मनः सर्वेन्द्रियाणि च।
खं वायुर्ज्योतिरापः पृथिवी विश्वस्य धारिणी ॥ ३ ॥

एतस्मात्=इसी परमेश्वरसे; **प्राणः**=प्राण; **जायते**=उत्पन्न होता है (तथा); **मनः**=मन (अन्तःकरण); **सर्वेन्द्रियाणि**=समस्त इन्द्रियाँ, **खम्**= आकाश; **वायुः**=वायु; **ज्योतिः**=तेज; **आपः**=जल; **च**=और; **विश्वस्य धारिणी**=सम्पूर्ण प्राणियोंको धारण करनेवाली; **पृथिवी**=पृथ्वी (ये सब उत्पन्न होते हैं) ॥ ३ ॥

व्याख्या—यद्यपि वे परब्रह्म पुरुषोत्तम निराकार और मन, इन्द्रिय आदि करण-समुदायसे सर्वथा रहित हैं, तथापि सब कुछ करनेमें समर्थ हैं। इन सर्वशक्तिमान् परब्रह्म पुरुषोत्तमसे ही सृष्टिकालमें प्राण, मन (अन्तःकरण) और सम्पूर्ण इन्द्रियाँ तथा आकाश, वायु, तेज, जल और सम्पूर्ण प्राणियोंको धारण करनेवाली पृथ्वी—ये पाँचों महाभूत, सब-के-सब उत्पन्न होते हैं ॥ ३ ॥

सम्बन्ध—*इस प्रकार संक्षेपमें परमेश्वरसे सूक्ष्म तत्त्वोंकी उत्पत्तिका प्रकार बतलाकर अब इस जगत्‌में भगवान्‌का विराट् रूप देखनेका प्रकार बतलाते हैं—*

अग्निर्मूर्धा चक्षुषी चन्द्रसूर्यौ
दिशः श्रोत्रे वाग् विवृताश्च वेदाः।
वायुः प्राणो हृदयं विश्वमस्य
पद्भ्यां पृथिवी ह्येष सर्वभूतान्तरात्मा ॥ ४ ॥

अस्य=इस परमेश्वरका; **अग्निः**=अग्नि; **मूर्धा**=मस्तक है; **चन्द्रसूर्यौ**=चन्द्रमा और सूर्य; **चक्षुषी**=दोनों नेत्र हैं; **दिशः**=सब दिशाएँ; **श्रोत्रे**=दोनों कान हैं; **च**=और; **विवृताः वेदाः**=विस्तृत वेद; **वाक्**=वाणी हैं (तथा); **वायुः प्राणः**=वायु प्राण है; **विश्वम् हृदयम्**=जगत् हृदय है; **पद्भ्याम्**=इसके दोनों पैरोंसे; **पृथिवी**=पृथ्वी (उत्पन्न हुई है); **एषः हि**=यही; **सर्वभूतान्तरात्मा**=समस्त प्राणियोंका अन्तरात्मा है ॥ ४ ॥

व्याख्या—दूसरे मन्त्रमें जिन परमेश्वरके निराकार स्वरूपका वर्णन किया गया है, उन्हीं परब्रह्मका यह प्रत्यक्ष दिखायी देनेवाला जगत् विराट् रूप है। इन विराट्स्वरूप परमेश्वरका अग्नि अर्थात् द्युलोक ही मानो मस्तक है, चन्द्रमा और सूर्य दोनों नेत्र हैं, समस्त दिशाएँ कान हैं, नाना छन्द और ऋचाओंके रूपमें विस्तृत चारों वेद वाणी हैं, वायु प्राण है, सम्पूर्ण चराचर जगत् हृदय है, पृथ्वी मानो उनके पैर हैं। ये ही परब्रह्म परमेश्वर समस्त प्राणियोंके अन्तर्यामी परमात्मा हैं ॥ ४ ॥

सम्बन्ध—*उन परमात्मासे इस चराचर जगत्‌की उत्पत्ति किस क्रमसे होती है, इस जिज्ञासापर प्रकारान्तरसे जगत्‌की उत्पत्तिका क्रम बतलाते हैं—*

तस्मादग्निः समिधो यस्य सूर्यः
सोमात्पर्जन्य ओषधयः पृथिव्याम्।
पुमान् रेतः सिञ्चति योषितायां
बह्वीः प्रजाः पुरुषात् सम्प्रसूताः ॥ ५ ॥

तस्मात्=उससे ही; **अग्निः**=अग्निदेव प्रकट हुआ; **यस्य समिधः**=जिसकी समिधा; **सूर्यः**=सूर्य है; (उस अग्निसे सोम उत्पन्न हुआ) **सोमात्**=सोमसे; **पर्जन्यः**=मेघ उत्पन्न हुए (और मेघोंसे वर्षाद्वारा); **पृथिव्याम्**=पृथ्वीमें; **ओषधयः**=नाना प्रकारकी ओषधियाँ (उत्पन्न हुईं); **रेतः**=(ओषधियोंके भक्षणसे उत्पन्न हुए) वीर्यको; **पुमान्**=पुरुष; **योषितायाम्**=स्त्रीमें; **सिञ्चति**=सिंचन करता है (जिससे संतान उत्पन्न होती है); **[एवम्]**=इस प्रकार; **पुरुषात्**=उस परम पुरुषसे ही; **बह्वीः प्रजाः**=नाना प्रकारके चराचर

प्राणी; **सम्प्रसूताः**=नियमपूर्वक उत्पन्न हुए हैं ॥ ५ ॥

व्याख्या—जब-जब परमेश्वरसे यह जगत् उत्पन्न होता है तब-तब सदैव एक प्रकारसे ही होता हो—ऐसा नियम नहीं है। वे जब जैसा संकल्प करते हैं, उसी प्रकार उसी क्रमसे जगत् उत्पन्न हो जाता है। इसी भावको प्रकट करनेके लिये यहाँ प्रकारान्तरसे सृष्टिकी उत्पत्ति बतलायी गयी है। मन्त्रका सारांश यह है कि परब्रह्म पुरुषोत्तमसे सर्वप्रथम तो उनकी अचिन्त्य शक्तिका एक अंश अद्भुत अग्नितत्त्व उत्पन्न हुआ, जिसकी समिधा (ईंधन) सूर्य है, अर्थात् जो सूर्यबिम्बके रूपमें प्रज्वलित रहती है; अग्निसे चन्द्रमा उत्पन्न हुआ, चन्द्रमासे (सूर्यकी रश्मियोंमें सूक्ष्मरूपसे स्थित जलमें कुछ शीतलता आ जानेके कारण) मेघ उत्पन्न हुए। मेघोंसे वर्षाद्वारा पृथ्वीमें नाना प्रकारकी ओषधियाँ उत्पन्न हुईं। उन ओषधियोंके भक्षणसे उत्पन्न हुए वीर्यको जब पुरुष अपनी जातिकी स्त्रीमें सिंचन करता है, तब उससे संतान उत्पन्न होती है। इस प्रकार परमपुरुष परमेश्वरसे ये नाना प्रकारके चराचर प्राणी उत्पन्न हुए हैं ॥ ५ ॥

सम्बन्ध—*इस प्रकार समस्त प्राणियोंकी उत्पत्तिका क्रम बतलाकर अब यह बात बतायी जाती है कि उन सबकी रक्षाके लिये किये जानेवाले यज्ञादि, उनके साधन और फल भी उन्हीं परमेश्वरसे प्रकट होते हैं*—

तस्मादृचः साम यजूंषि दीक्षा
यज्ञाश्च सर्वे क्रतवो दक्षिणाश्च।
संवत्सरश्च यजमानश्च लोकाः
सोमो यत्र पवते यत्र सूर्यः ॥ ६ ॥

तस्मात्=उस परमेश्वरसे ही; **ऋचः**=ऋग्वेदकी ऋचाएँ; **साम**= सामवेदके मन्त्र; **यजूंषि**=यजुर्वेदकी श्रुतियाँ; (और) **दीक्षा**=दीक्षा; **च**=तथा; **सर्वे**= समस्त; **यज्ञाः**=यज्ञ; **क्रतवः**=क्रतु; **च**=एवं; **दक्षिणाः**=दक्षिणाएँ; **च**=तथा; **संवत्सरः**=संवत्सररूप काल; **यजमानः**=यजमान; **च**=और; **लोकाः**=सब लोक (उत्पन्न हुए हैं); **यत्र**=जहाँ; **सोमः**=चन्द्रमा; **पवते**=प्रकाश फैलाता है (और); **यत्र**=जहाँ; **सूर्यः**=सूर्य; **[पवते]**=प्रकाश देता है ॥ ६ ॥

व्याख्या—उन परमेश्वरसे ही ऋग्वेदकी ऋचाएँ, सामवेदके मन्त्र और यजुर्वेदकी श्रुतियाँ एवं यज्ञादि कर्मोंकी दीक्षा*, सब प्रकारके यज्ञ और क्रतु,† उनमें दी जानेवाली दक्षिणाएँ, जिसमें वे किये जाते हैं—वह संवत्सररूप काल, उनको करनेका अधिकारी यजमान, उनके फलस्वरूप वे सब लोक, जहाँ चन्द्रमा और सूर्य प्रकाश फैलाते हैं—ये सब उत्पन्न हुए हैं॥ ६॥

सम्बन्ध—*अब देवादि समस्त प्राणियोंके भेद और सब प्रकारके सदाचार भी उन्हीं ब्रह्मसे उत्पन्न हुए हैं, यह बतलाते हैं—*

तस्माच्च देवा बहुधा सम्प्रसूताः
साध्या मनुष्याः पशवो वयांसि।
प्राणापानौ व्रीहियवौ तपश्च
श्रद्धा सत्यं ब्रह्मचर्यं विधिश्च॥ ७॥

च=तथा; **तस्मात्**=उसी परमेश्वरसे; **बहुधा**=अनेक भेदोंवाले; **देवाः**=देवतालोग; **सम्प्रसूताः**=उत्पन्न हुए; **साध्याः**=साध्यगण; **मनुष्याः**=मनुष्य; **पशवः वयांसि**=पशु-पक्षी; **प्राणापानौ**=प्राण-अपानवायु; **व्रीहियवौ**=धान, जौ आदि अन्न; **च**=तथा; **तपः**=तप; **श्रद्धा**=श्रद्धा; **सत्यम्**=सत्य (और); **ब्रह्मचर्यम्**=ब्रह्मचर्य; **च**=एवं; **विधिः**=यज्ञ आदिके अनुष्ठानकी विधि भी; [**एते सम्प्रसूताः**]=ये सब-के-सब उत्पन्न हुए हैं॥ ७॥

व्याख्या—उन परब्रह्म परमेश्वरसे ही वसु, रुद्र आदि अनेक भेदोंवाले देवतालोग उत्पन्न हुए हैं। उन्हींसे साध्यगण, नाना प्रकारके मनुष्य, विभिन्न जातियोंके पशु, विविध भाँतिके पक्षी और अन्य सब प्राणी उत्पन्न हुए हैं। सबके जीवनरूप प्राण और अपान तथा सब प्राणियोंके आहाररूप धान, जौ

---

* शास्त्रविधिके अनुसार किसी यज्ञका आरम्भ करते समय यजमान जो संकल्पके साथ उसके अनुष्ठानसम्बन्धी नियमोंके पालनका व्रत लेता है, उसका नाम 'दीक्षा' है।

† यज्ञ और क्रतु—ये यज्ञके ही दो भेद हैं। जिन यज्ञोंमें यूप बनानेकी विधि है, उन्हें 'क्रतु' कहते हैं।

आदि अनेक प्रकारके अन्न भी उन्हींसे उत्पन्न हुए हैं। उन्हींसे तप, श्रद्धा, सत्य और ब्रह्मचर्य प्रकट हुए हैं तथा यज्ञादि कर्म करनेकी विधि भी उन परमेश्वरसे ही प्रकट हुई है। तात्पर्य यह कि सब कुछ उन्हींसे उत्पन्न हुआ है। वे ही सबके परम कारण हैं ॥ ७ ॥

सप्त प्राणाः प्रभवन्ति तस्मात्
सप्तार्चिषः समिधः सप्त होमाः ।
सप्त इमे लोका येषु चरन्ति प्राणा
गुहाशया निहिताः सप्त सप्त ॥ ८ ॥

तस्मात्=उसी परमेश्वरसे; **सप्त**=सात; **प्राणाः**=प्राण; **प्रभवन्ति**= उत्पन्न होते हैं (तथा); **सप्त अर्चिषः**=अग्निकी (काली-कराली आदि) सात लपटें; **[सप्त] समिधः**=सात (विषयरूपी) समिधाएँ; **सप्त**= सात प्रकारके; **होमाः**=हवन (तथा); **इमे सप्त लोकाः**=ये सात लोक—इन्द्रियोंके सात द्वार (उसीसे उत्पन्न होते हैं); **येषु**=जिनमें; **प्राणाः**=प्राण; **चरन्ति**=विचरते हैं; **गुहाशयाः**=हृदयरूप गुफामें शयन करनेवाले ये; **सप्त सप्त**=सात-सातके समुदाय; **निहिताः**=(उसीके द्वारा) सब प्राणियोंमें स्थापित किये हुए हैं ॥ ८ ॥

व्याख्या—उन्हीं परमेश्वरसे सात प्राण अर्थात् जिनमें विषयोंको प्रकाशित करनेकी विशेष शक्ति है, ऐसी सात इन्द्रियाँ—कान, त्वचा, नेत्र, रसना और घ्राण तथा वाणी एवं मन;* तथा मनसहित इन्द्रियोंकी सुनना, स्पर्श करना, देखना, स्वाद लेना, सूँघना, बोलना और मनन करना, इस प्रकार सात वृत्तियाँ अर्थात् विषय ग्रहण करनेवाली शक्तियाँ; उन इन्द्रियोंके विषयरूप

---

* ब्रह्मसूत्रमें इस विषयपर विचार किया गया है कि यहाँ इन्द्रियाँ सात ही क्यों बतलायी गयी हैं, वहाँ कहा गया है कि इन सातके अतिरिक्त हाथ, पैर, उपस्थ तथा गुदा भी इन्द्रियाँ हैं, अतः मनसहित कुल ग्यारह इन्द्रियाँ हैं, यहाँ प्रधानतासे सातका वर्णन है (ब्रह्मसूत्र २।४।२,६)।

सात समिधाएँ; सात प्रकारका हवन अर्थात् बाह्यविषयरूप समिधाओंका इन्द्रियरूप अग्नियोंमें निक्षेपरूप क्रिया और इन इन्द्रियोंके वासस्थानरूप सात लोक, जिनमें रहकर ये इन्द्रियरूप सात प्राण अपना-अपना कार्य करते हैं—निद्राके समय मनके साथ एक होकर हृदयरूप गुफामें शयन करनेवाले ये सात-सातके समुदाय परमेश्वरके द्वारा ही समस्त प्राणियोंमें स्थापित किये हुए हैं ॥ ८ ॥

सम्बन्ध—*इस प्रकार आध्यात्मिक वस्तुओंकी उत्पत्ति और स्थिति परमेश्वरसे बतलाकर अब बाह्य जगत्की उत्पत्ति भी उसीसे बताते हुए प्रकरणका उपसंहार करते हैं—*

अतः समुद्रा गिरयश्च सर्वे-
ऽस्मात्स्यन्दन्ते सिन्धवः सर्वरूपाः ।
अतश्च सर्वा ओषधयो रसश्च
येनैष भूतैस्तिष्ठते ह्यन्तरात्मा ॥ ९ ॥

अतः=इसीसे; **सर्वे**=समस्त; **समुद्राः**=समुद्र; **च**=और; **गिरयः**=पर्वत (उत्पन्न हुए हैं); **अस्मात्**=इसीसे (प्रकट होकर); **सर्वरूपाः**=अनेक रूपोंवाली; **सिन्धवः**=नदियाँ; **स्यन्दन्ते**=बहती हैं; **च**=तथा; **अतः**=इसीसे; **सर्वाः**=सम्पूर्ण; **ओषधयः**=ओषधियाँ; **च**=और; **रसः**=रस (उत्पन्न हुए हैं); **येन**=जिस रससे (पुष्ट हुए शरीरोंमें); **हि**=ही; **एषः**=यह; **अन्तरात्मा**=(सबका) अन्तरात्मा (परमेश्वर); **भूतैः**=सब प्राणियों (की आत्मा) के सहित; **तिष्ठते**=(उन-उनके हृदयमें) स्थित है ॥ ९ ॥

व्याख्या—इन्हीं परमेश्वरसे समस्त समुद्र और पर्वत उत्पन्न हुए हैं, इन्हींसे निकलकर अनेक आकारवाली नदियाँ बह रही हैं, इन्हींसे समस्त ओषधियाँ और वह रस भी उत्पन्न हुआ है, जिससे पुष्ट हुए शरीरोंमें वे सबके अन्तरात्मा परमेश्वर उन सब प्राणियोंकी आत्माके सहित उन-उनके हृदयमें रहते हैं ॥ ९ ॥

सम्बन्ध—*उन परमेश्वरसे सबकी उत्पत्ति होनेके कारण सब उन्हींका स्वरूप है, यह कहकर उनको जाननेका फल बताते हुए इस खण्डकी समाप्ति करते हैं—*

पुरुष एवेदं विश्वं कर्म तपो ब्रह्म परामृतम्। एतद्यो वेद निहितं गुहायां सोऽविद्याग्रन्थिं विकिरतीह सोम्य ॥ १० ॥

तपः=तप; **कर्म**=कर्म; (और) **परामृतम्**=परम अमृतरूप; **ब्रह्म**=ब्रह्म; **इदम्**=यह; **विश्वम्**=सब कुछ; **पुरुषः एव**=परमपुरुष पुरुषोत्तम ही है; **सोम्य**=हे प्रिय !; **एतत्**=इस; **गुहायाम्**=हृदयरूप गुफामें; **निहितम्**=स्थित अन्तर्यामी परमपुरुषको; **यः**=जो; **वेद**=जानता है; **सः**=वह; **इह [एव]**=यहाँ (इस मनुष्यशरीरमें) ही; **अविद्याग्रन्थिम्**=अविद्याजनित गाँठको; **विकिरति**=खोल डालता है ॥ १० ॥

व्याख्या—तप अर्थात् संयमरूप साधन, कर्म अर्थात् बाह्य साधनोंद्वारा किये जानेवाले कृत्य तथा परम अमृत ब्रह्म—यह सब कुछ परमपुरुष पुरुषोत्तम ही है। प्रिय शौनक ! हृदयरूप गुफामें छिपे हुए इन अन्तर्यामी परमेश्वरको जो जान लेता है, वह इस मनुष्यशरीरमें ही अविद्याजनित अन्तःकरणकी गाँठका भेदन कर देता है अर्थात् सब प्रकारके संशय और भ्रमसे रहित होकर परब्रह्म पुरुषोत्तमको प्राप्त हो जाता है ॥ १० ॥

॥ प्रथम खण्ड समाप्त ॥ १ ॥



द्वितीय खण्ड

आविः संनिहितं गुहाचरं नाम महत्पदमत्रैतत्समर्पितम्। एजत्प्राणन्निमिषच्च यदेतज्जानथ सदसद्वरेण्यं परं विज्ञानाद्यद्वरिष्ठं प्रजानाम् ॥ १ ॥*

आविः=(जो) प्रकाशस्वरूप; **संनिहितम्**=अत्यन्त समीपस्थ; **गुहाचरम् नाम**=(हृदयरूप गुहामें स्थित होनेके कारण) गुहाचरनामसे प्रसिद्ध; **महत् पदम्**=(और) महान् पद (परम प्राप्य) है; **यत्**=जितने भी; **एजत्**=चेष्टा

---

* इस मन्त्रसे मिलता हुआ मन्त्र अथर्व० कां० १०।८।६ है।

करनेवाले; **प्राणत्**=श्वास लेनेवाले; **च**=और; **निमिषत्**=आँखोंको खोलने-मूँदनेवाले (प्राणी हैं); **एतत्**=ये (सब-के-सब); **अत्र**=इसीमें; **समर्पितम्**=समर्पित (प्रतिष्ठित) हैं; **एतत्**=इस परमेश्वरको; **जानथ**=तुमलोग जानो; **यत्**=जो; **सत्**=सत्; **असत्**=(और) असत् है; **वरेण्यम्**=सबके द्वारा वरण करनेयोग्य (और); **वरिष्ठम्**=अतिशय श्रेष्ठ है (तथा); **प्रजानाम्**=समस्त प्राणियोंकी; **विज्ञानात्**=बुद्धिसे; **परम्**=परे अर्थात् जाननेमें न आनेवाला है ॥ १ ॥

व्याख्या—सर्वशक्तिमान्, सर्वज्ञ और सर्वव्यापी परमेश्वर प्रकाश-स्वरूप हैं। समस्त प्राणियोंके अत्यन्त समीप उन्हींके हृदयरूप गुहामें छिपे रहनेके कारण ही ये गुहाचरनामसे प्रसिद्ध हैं। जितने भी हिलने-चलनेवाले, श्वास लेनेवाले और आँख खोलने-मूँदनेवाले प्राणी हैं, उन सबका समुदाय इन्हीं परमेश्वरमें समर्पित अर्थात् स्थित है। सबके आश्रय ये परमात्मा ही हैं। तुम इनको जानो। ये सत् और असत् अर्थात् कार्य और कारण एवं प्रकट और अप्रकट—सब कुछ हैं। सबके द्वारा वरण करनेयोग्य और अत्यन्त श्रेष्ठ हैं तथा समस्त प्राणियोंकी बुद्धिसे परे अर्थात् बुद्धिद्वारा अज्ञेय हैं ॥ १ ॥

सम्बन्ध—*उन्हीं परब्रह्म परमेश्वरका तत्त्व समझानेके लिये पुनः उनके स्वरूपका दूसरे शब्दोंमें वर्णन करते हैं—*

यदर्चिमद्यदणुभ्योऽणु च यस्मिँल्लोका निहिता लोकिनश्च। तदेतदक्षरं ब्रह्म स प्राणस्तदु वाङ्मनः। तदेतत्सत्यं तदमृतं तद्वेद्धव्यं सोम्य विद्धि ॥ २ ॥

यत्=जो; **अर्चिमत्**=दीप्तिमान् है; **च**=और; **यत्**=जो; **अणुभ्यः**= सूक्ष्मोंसे भी; **अणु**=सूक्ष्म है; **यस्मिन्**=जिसमें; **लोकाः**=समस्त लोक; **च**=और; **लोकिनः**=उन लोकोंमें रहनेवाले प्राणी; **निहिताः**=स्थित हैं; **तत्**=वही; **एतत्**=यह; **अक्षरम्**=अविनाशी; **ब्रह्म**=ब्रह्म है; **सः**=वही; **प्राणः**=प्राण है; **तत् उ**=वही; **वाक्**=वाणी; **मनः**=(और) मन है; **तत्**=वही; **एतत्**=यह; **सत्यम्**=सत्य है; **तत्**=वह; **अमृतम्**=अमृत है; **सोम्य**=हे प्यारे !; **तत्**=उस; **वेद्धव्यम्**=वेधनेयोग्य लक्ष्यको; **विद्धि**=तू वेध ॥ २ ॥

व्याख्या—जो परब्रह्म परमेश्वर अतिशय देदीप्यमान प्रकाशस्वरूप हैं, जो सूक्ष्मोंसे भी अतिशय सूक्ष्म हैं, जिनमें समस्त लोक और उन लोकोंमें रहनेवाले समस्त प्राणी स्थित हैं अर्थात् ये सब जिनके आश्रित हैं, वे ही परम अक्षर ब्रह्म हैं, वे ही सबके जीवनदाता प्राण हैं, वे ही सबकी वाणी और मन अर्थात् समस्त जगत्‌के इन्द्रिय और अन्तःकरणरूपमें प्रकट हैं। वे ही परम सत्य और अमृत—अविनाशी तत्त्व हैं। प्रिय शौनक! उस वेधनेयोग्य लक्ष्यको तू वेध अर्थात् आगे बताये जानेवाले प्रकारसे साधन करके उसमें तन्मय हो जा॥ २॥

सम्बन्ध—*लक्ष्यको वेधनेके लिये धनुष और बाण चाहिये; अतः इस रूपककी पूर्णताके लिये सारी सामग्रीका वर्णन करते हैं—*

धनुर्गृहीत्वौपनिषदं महास्त्रं
शरं ह्युपासानिशितं संधयीत।
आयम्य तद् भावगतेन चेतसा
लक्ष्यं तदेवाक्षरं सोम्य विद्धि॥ ३॥

औपनिषदम्=उपनिषद्‌में वर्णित प्रणवरूप; **महास्त्रम्**=महान् अस्त्र; **धनुः**=धनुषको; **गृहीत्वा**=लेकर (उसपर); **हि**=निश्चय ही; **उपासानिशितम्**= उपासनाद्वारा तीक्ष्ण किया हुआ; **शरम्**=बाण; **संधयीत**=चढ़ाये; **भावगतेन**= (फिर) भावपूर्ण; **चेतसा**=चित्तके द्वारा; **तत्**=उस बाणको; **आयम्य**=खींचकर; **सोम्य**=हे प्रिय!; **तत्**=उस; **अक्षरम्**=परम अक्षर पुरुषोत्तमको; **एव**=ही; **लक्ष्यम्**=लक्ष्य मानकर; **विद्धि**=वेधे॥ ३॥

व्याख्या—जिस प्रकार किसी बाणको लक्ष्यपर छोड़नेसे पहले उसकी नोकको सानपर धरकर तेज किया जाता है, उसपर चढ़े हुए मोरचे आदिको दूर करके उसे उज्ज्वल एवं चमकीला बनाया जाता है, उसी प्रकार आत्मारूपी बाणको उपासनाद्वारा निर्मल एवं शुद्ध बनाकर उसको प्रणवरूप धनुषपर भलीभाँति चढ़ाना चाहिये। अर्थात् आत्माको प्रणवके उच्चारण एवं उसके अर्थरूप परमात्माके चिन्तनमें सम्यक् प्रकारसे लगाना चाहिये। इसके अनन्तर

जैसे धनुषको पूरी शक्तिसे खींचकर बाणको लक्ष्यपर छोड़ा जाता है, जिससे वह पूरी तरहसे लक्ष्यको वेध सके, उसी प्रकार यहाँ भावपूर्ण चित्तसे ओंकारका अधिक-से-अधिक लम्बा उच्चारण एवं उसके अर्थका प्रगाढ़ एवं सुदीर्घ कालतक चिन्तन करनेके लिये कहा गया है, जिससे आत्मा निश्चितरूपसे अविनाशी परमात्मामें प्रवेश कर जाय, उसमें तन्मय होकर अविचल स्थिति प्राप्त कर ले। भाव यह है कि ओंकारका प्रेमपूर्वक उच्चारण एवं उसके अर्थरूप परमात्माका प्रगाढ़ चिन्तन ही उनकी प्राप्तिका सर्वोत्तम उपाय है ॥ ३ ॥

सम्बन्ध—*पूर्वमन्त्रमें कहे हुए रूपकको यहाँ स्पष्ट करते हैं—*

प्रणवो धनुः शरो ह्यात्मा ब्रह्म तल्लक्ष्यमुच्यते ।
अप्रमत्तेन वेद्धव्यं शरवत्तन्मयो भवेत् ॥ ४ ॥

प्रणवः=(यहाँ) ओंकार ही; **धनुः**=धनुष है; **आत्मा**=आत्मा; **हि**=ही; **शरः**=बाण है (और); **ब्रह्म**=परब्रह्म परमेश्वर ही; **तल्लक्ष्यम्**=उसका लक्ष्य; **उच्यते**=कहा जाता है; **अप्रमत्तेन**=(वह) प्रमादरहित मनुष्यद्वारा ही; **वेद्धव्यम्**=बींधा जानेयोग्य है (अतः); **शरवत्**=(उसे बेधकर) बाणकी तरह; **तन्मयः**=(उस लक्ष्यमें) तन्मय; **भवेत्**=हो जाना चाहिये ॥ ४ ॥

व्याख्या—ऊपर बतलाये हुए रूपकमें परमेश्वरका वाचक प्रणव (ओंकार) ही मानो धनुष है, यह जीवात्मा ही बाण है और परब्रह्म परमेश्वर ही उसके लक्ष्य हैं। तत्परतासे उनकी उपासना करनेवाले प्रमादरहित साधक-द्वारा ही वह लक्ष्य बेधा जा सकता है; इसलिये हे सोम्य ! तुझे पूर्वोक्तरूपसे उस लक्ष्यको बेधकर बाणकी ही भाँति उसमें तन्मय हो जाना चाहिये ॥ ४ ॥

सम्बन्ध—*पुनः परमेश्वरके स्वरूपका वर्णन करते हुए प्रमादरहित और विरक्त होकर उसे जाननेके लिये श्रुति कहती है—*

यस्मिन् द्यौः पृथिवी चान्तरिक्ष-
मोतं मनः सह प्राणैश्च सर्वैः ।
तमेवैकं जानथ आत्मानमन्या
वाचो विमुञ्चथामृतस्यैष सेतुः ॥ ५ ॥

यस्मिन्=जिसमें; **द्यौः**=स्वर्ग; **पृथिवी**=पृथिवी; **च**=और; **अन्तरिक्षम्**=और उनके बीचका आकाश; **च**=तथा; **सर्वैः प्राणैः सह**=समस्त प्राणोंके सहित; **मनः**=मन; **ओतम्**=गुँथा हुआ है; **तम् एव**=उसी; **एकम्**=एक; **आत्मानम्**=सबके आत्मरूप परमेश्वरको; **जानथ**=जानो; **अन्याः**=दूसरी; **वाचः**=सब बातोंको; **विमुञ्चथ**=सर्वथा छोड़ दो; **एषः**=यही; **अमृतस्य**=अमृतका; **सेतुः**=सेतु है ॥ ५ ॥

व्याख्या—जिन परब्रह्म परमात्मामें स्वर्ग, पृथ्वी तथा उनके बीचका सम्पूर्ण आकाश एवं समस्त प्राण और इन्द्रियोंके सहित मन-बुद्धिरूप अन्तःकरण सब-के-सब ओत-प्रोत हैं; उन्हीं एक सर्वात्मा परमेश्वरको तुम पूर्वोक्त उपायके द्वारा जानो; दूसरी सब बातोंको—ग्राम्यचर्चाको सर्वथा छोड़ दो। वे सब तुम्हारे साधनमें विघ्न हैं; अतः उनसे सर्वथा विरक्त होकर साधनमें तत्पर हो जाओ। यही अमृतका सेतु है, अर्थात् संसार-समुद्रसे पार होकर अमृतस्वरूप परमात्माको प्राप्त करनेके लिये पुलके सदृश है ॥ ५ ॥

सम्बन्ध—*पुनः परमेश्वरके स्वरूपका वर्णन करते हुए उनकी प्राप्तिका साधन बताते हैं—*

अरा इव रथनाभौ संहता यत्र नाड्यः
स एषोऽन्तश्चरते बहुधा जायमानः ।
ओमित्येवं ध्यायथ आत्मानं
स्वस्ति वः पाराय तमसः परस्तात् ॥ ६ ॥

रथनाभौ=रथकी नाभिमें (जुड़े हुए); **अराः इव**=अरोंकी भाँति; **यत्र**=जिसमें; **नाड्यः**=समस्त देहव्यापिनी नाड़ियाँ; **संहताः**=एकत्र स्थित हैं; (उसी हृदयमें) **सः**=वह; **बहुधा**=बहुत प्रकारसे; **जायमानः**=उत्पन्न होनेवाला; **एषः**=यह (अन्तर्यामी परमेश्वर); **अन्तः**=मध्यभागमें; **चरते**=रहता है; **[एनम्]**=इस; **आत्मानम्**=सर्वात्मा परमात्माका; **ओम्**=ओम्; **इति एवम्**=इस नामके द्वारा ही; **ध्यायथ**=ध्यान करो; **तमसः परस्तात्**=अज्ञानमय अन्धकारसे अतीत; **पाराय**=(तथा) भवसागरसे अन्तिम तटरूप पुरुषोत्तमकी प्राप्तिके

लिये (साधन करनेमें); **वः**=तुमलोगोंका; **स्वस्ति**=कल्याण हो ॥ ६ ॥

व्याख्या—'जिस प्रकार रथके पहियेके केन्द्रमें अरे लगे रहते हैं, उसी प्रकार शरीरकी समस्त नाड़ियाँ जिस हृदयदेशमें एकत्र स्थित हैं, उसी हृदयमें नाना रूपसे प्रकट होनेवाले परब्रह्म परमात्मा अन्तर्यामीरूपसे रहते हैं। इन सबके आत्मा पुरुषोत्तमका 'ओम्' इस नामके उच्चारणके साथ-साथ निरन्तर ध्यान करते रहो। इस प्रकार परमात्माके 'ओम्' इस नामका जप और उसके अर्थभूत परमात्माका ध्यान करते रहनेसे तुम उन परमात्माको प्राप्त करनेमें समर्थ हो जाओगे, जो अज्ञानरूप अन्धकारसे सर्वथा अतीत और संसार-समुद्रके दूसरे पार हैं। तुम्हारा कल्याण हो।' इस प्रकार आचार्य उपर्युक्त विधिसे साधन करनेवाले शिष्योंको आशीर्वाद देते हैं ॥ ६ ॥

सम्बन्ध—*पुनः परमेश्वरके स्वरूपका ही वर्णन करते हैं*—

यः सर्वज्ञः सर्वविद् यस्यैष महिमा भुवि।
दिव्ये ब्रह्मपुरे ह्येष व्योम्न्यात्मा प्रतिष्ठितः॥
मनोमयः प्राणशरीरनेता
प्रतिष्ठितोऽन्ने हृदयं संनिधाय।
तद्विज्ञानेन परिपश्यन्ति धीरा
आनन्दरूपममृतं यद् विभाति॥ ७॥

यः सर्वज्ञः=जो सर्वदा जाननेवाला (और); **सर्ववित्**=सब ओरसे सबको जाननेवाला है; **यस्य**=जिसकी; **भुवि**=जगत्‌में; **एषः**=यह; **महिमा**=महिमा है; **एषः हि आत्मा**=यह प्रसिद्ध सबका आत्मा परमेश्वर; **दिव्ये व्योम्नि**=दिव्य आकाशरूप; **ब्रह्मपुरे**=ब्रह्मलोकमें; **प्रतिष्ठितः**=स्वरूपसे स्थित है; **प्राणशरीरनेता**=सबके प्राण और शरीरका नेता; **मनोमयः**=(यह परमात्मा मनमें व्याप्त होनेके कारण) मनोमय है; **हृदयं संनिधाय**=(यही) हृदय-कमलका आश्रय लेकर; **अन्ने**=अन्नमय स्थूल शरीरमें; **प्रतिष्ठितः**=प्रतिष्ठित है; **यत्**=जो; **आनन्दरूपम्**=आनन्दस्वरूप; **अमृतम्**=अविनाशी परब्रह्म; **विभाति**=सर्वत्र प्रकाशित है; **धीराः**=बुद्धिमान् मनुष्य;

विज्ञानेन=विज्ञानके द्वारा; **तत्**=उसको; **परिपश्यन्ति**=भलीभाँति प्रत्यक्ष कर लेते हैं ॥ ७ ॥

व्याख्या—जो परब्रह्म परमेश्वर सर्वज्ञ—सर्वदा जाननेवाले और सब ओरसे सबको भलीभाँति जाननेवाले हैं, अर्थात् जिनकी ज्ञानशक्ति देश-कालसे बाधित नहीं है, जिनकी यह आश्चर्यमयी महिमा जगत्में प्रकट है, वे सबके आत्मा परमेश्वर परम व्योम नामसे प्रसिद्ध दिव्य आकाशरूप ब्रह्मलोकमें स्वरूपसे स्थित हैं। सम्पूर्ण प्राणियोंके प्राण और शरीरका नियमन करनेवाले ये परमेश्वर मनमें व्याप्त होनेके कारण मनोमय कहलाते हैं और सब प्राणियोंके हृदयकमलका आश्रय लेकर अन्नमय स्थूलशरीरमें प्रतिष्ठित हैं। बुद्धिमान् मनुष्य विज्ञानद्वारा उन परब्रह्मको भलीभाँति प्रत्यक्ष कर लेते हैं जो आनन्दमय अविनाशीरूपसे सर्वत्र प्रकाशित हैं ॥ ७ ॥

सम्बन्ध—*अब परमात्माके ज्ञानका फल बताते हैं—*

भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः ।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन्दृष्टे परावरे ॥ ८ ॥

तस्मिन् परावरे दृष्टे=कार्य-कारणस्वरूप उस परात्पर पुरुषोत्तमको तत्त्वसे जान लेनेपर; **अस्य हृदयग्रन्थिः**=इस (जीवात्मा) के हृदयकी गाँठ; **भिद्यते**=खुल जाती है; **सर्वसंशयाः**=सम्पूर्ण संशय; **छिद्यन्ते**=कट जाते हैं; **च**=और; **कर्माणि**=समस्त शुभाशुभ कर्म; **क्षीयन्ते**=नष्ट हो जाते हैं ॥ ८ ॥

व्याख्या—कार्य और कारणस्वरूप उन परात्पर परब्रह्म पुरुषोत्तमको तत्त्वसे जान लेनेपर इस जीवके हृदयकी अविद्यारूप वह गाँठ खुल जाती है, जिसके कारण इसने इस जड शरीरको ही अपना स्वरूप मान रखा है; इतना ही नहीं; इसके समस्त संशय सर्वथा कट जाते हैं और समस्त शुभाशुभ कर्म नष्ट हो जाते हैं। अर्थात् यह जीव सब बन्धनोंसे सर्वथा मुक्त होकर परमानन्दस्वरूप परमेश्वरको प्राप्त हो जाता है ॥ ८ ॥

सम्बन्ध—*उन परब्रह्मके स्थान, स्वरूप और उनकी महिमाका वर्णन करते हैं—*

हिरण्मये परे कोशे विरजं ब्रह्म निष्कलम्।
तच्छुभ्रं ज्योतिषां ज्योतिस्तद्यदात्मविदो विदुः॥ ९॥

तत्=वह; **विरजम्**=निर्मल; **निष्कलम्**=अवयवरहित; **ब्रह्म**=परब्रह्म; **हिरण्मये परे कोशे**=प्रकाशमय परम कोशमें—परमधाममें (विराजमान है); **तत्**=वह; **शुभ्रम्**=सर्वथा विशुद्ध; **ज्योतिषाम्**=समस्त ज्योतियोंकी भी; **ज्योतिः**=ज्योति है; **यत्**=जिसको; **आत्मविदः**=आत्मज्ञानी; **विदुः**=जानते हैं॥ ९॥

व्याख्या—वे निर्मल—निर्विकार और अवयवरहित—अखण्ड परमात्मा प्रकाशमय परमधाममें विराजमान हैं; वे सर्वथा विशुद्ध और समस्त प्रकाशयुक्त पदार्थोंके भी प्रकाशक हैं तथा उन्हें आत्मज्ञानी महात्माजन ही जानते हैं॥ ९॥

न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकं
नेमा विद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्निः।
तमेव भान्तमनुभाति सर्वं
तस्य भासा सर्वमिदं विभाति॥ १०॥*

तत्र=वहाँ; **न**=न (तो); **सूर्यः**=सूर्य; **भाति**=प्रकाशित होता है; **न**=न; **चन्द्रतारकम्**=चन्द्रमा और तारागण ही; **न**=(तथा) न; **इमाः**=ये; **विद्युतः**=बिजलियाँ ही; **भान्ति**=(वहाँ) चमकती हैं; **अयम् अग्निः कुतः**=फिर इस अग्निके लिये तो कहना ही क्या है; **तम् भान्तम् एव**=(क्योंकि) उसके प्रकाशित होनेपर ही; **सर्वम्**=सब; **अनुभाति**=उसके पीछे उसीके प्रकाशसे प्रकाशित होते हैं; **तस्य**=उसीके; **भासा**=प्रकाशसे; **इदम् सर्वम्**=यह सम्पूर्ण जगत्; **विभाति**=प्रकाशित होता है॥ १०॥

---

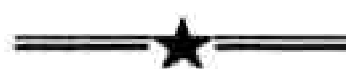
* यह मन्त्र कठोपनिषद् (२।२।१५) में और श्वेता० उ० (६।१४) में भी है।

व्याख्या—उन स्वप्रकाश परमानन्दस्वरूप परब्रह्म परमेश्वरके समीप यह सूर्य नहीं प्रकाशित होता। जिस प्रकार सूर्यका प्रकाश प्रकट होनेपर खद्योतका प्रकाश लुप्त हो जाता है, वैसे ही सूर्यका तेज भी उस असीम तेजके सामने लुप्त हो जाता है। चन्द्रमा, तारागण और बिजली भी वहाँ नहीं चमकते; फिर इस लौकिक अग्निकी तो बात ही क्या है। क्योंकि प्राकृत जगत्‌में जो कुछ भी तत्त्व प्रकाशशील हैं, सब उन परब्रह्म परमेश्वरकी प्रकाश-शक्तिके अंशको पाकर ही प्रकाशित हैं। वे अपने प्रकाशके समीप अपना प्रकाश कैसे फैला सकते हैं ? सारांश यह कि यह सम्पूर्ण जगत् उन जगदात्मा पुरुषोत्तमके प्रकाशसे अथवा उस प्रकाशके एक क्षुद्रतम अंशसे प्रकाशित हो रहा है॥ १०॥

ब्रह्मैवेदममृतं पुरस्ताद्ब्रह्म पश्चाद्ब्रह्म दक्षिणतश्चोत्तरेण।
अधश्चोर्ध्वं च प्रसृतं ब्रह्मैवेदं विश्वमिदं वरिष्ठम्॥ ११॥

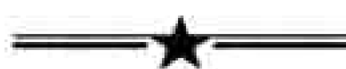
इदम्=यह; **अमृतम्**=अमृतस्वरूप; **ब्रह्म**=परब्रह्म; **एव**=ही; **पुरस्तात्**=सामने हैं; **ब्रह्म**=ब्रह्म ही; **पश्चात्**=पीछे हैं; **ब्रह्म**=ब्रह्म ही; **दक्षिणतः**=दायीं ओर; **च**=तथा; **उत्तरेण**=बायीं ओर; **अधः**=नीचेकी ओर; **च**=तथा; **ऊर्ध्वम्**=ऊपरकी ओर; **च**=भी; **प्रसृतम्**=फैला हुआ है; **इदम् [यत्]**=यह जो; **विश्वम्**=सम्पूर्ण जगत् है; **इदम्**=यह; **वरिष्ठम्**=सर्वश्रेष्ठ; **ब्रह्म एव**=ब्रह्म ही है॥ ११॥

व्याख्या—इस मन्त्रमें परमात्माकी सर्वव्यापकता और सर्वरूपताका प्रतिपादन किया गया है। सारांश यह कि ये अमृतस्वरूप परब्रह्म परमात्मा ही आगे-पीछे, दायें-बायें, बाहर-भीतर, ऊपर-नीचे—सर्वत्र फैले हुए हैं; इस विश्वब्रह्माण्डके रूपमें ये सर्वश्रेष्ठ ब्रह्म ही प्रत्यक्ष दिखायी दे रहे हैं॥ ११॥



॥ द्वितीय खण्ड समाप्त॥ २॥

॥ द्वितीय मुण्डक समाप्त॥ २॥



तृतीय मुण्डक

प्रथम खण्ड

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया
समानं वृक्षं परिषस्वजाते ।
तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्य-
नश्नन्नन्यो अभिचाकशीति ॥ १ ॥*

सयुजा=एक साथ रहनेवाले (तथा); **सखाया**=परस्पर सखाभाव रखनेवाले; **द्वा**=दो; **सुपर्णा**=पक्षी (जीवात्मा और परमात्मा); **समानम् वृक्षम् परिषस्वजाते**=एक ही वृक्ष (शरीर) का आश्रय लेकर रहते हैं; **तयोः**=उन दोनोंमेंसे; **अन्यः**=एक तो; **पिप्पलम्**=उस वृक्षके सुख-दुःखरूप कर्म-फलोंका; **स्वादु**=स्वाद ले-लेकर; **अत्ति**=उपभोग करता है (किंतु); **अन्यः**=दूसरा; **अनश्नन्**=न खाता हुआ; **अभिचाकशीति**=केवल देखता रहता है ॥ १ ॥

व्याख्या—जिस प्रकार गीतामें जगत्का अश्वत्थ (पीपल) वृक्षके रूपमें वर्णन किया गया है, उसी प्रकार इस मन्त्रमें शरीरको पीपलके वृक्षका और जीवात्मा तथा परमात्माको पक्षियोंका रूप देकर वर्णन किया गया है। इसी तरहका वर्णन कठोपनिषद्में भी गुहामें प्रविष्ट छाया और धूपके नामसे आया है। भाव दोनों जगह प्रायः एक ही है। मन्त्रका सारांश यह है कि यह मनुष्यशरीर मानो एक वृक्ष है। ईश्वर और जीव—ये सदा साथ रहनेवाले दो मित्र पक्षी हैं। ये इस शरीररूपवृक्षमें एक साथ ही हृदयरूप घोंसलेमें निवास करते हैं। इन दोनोंमें एक—जीवात्मा तो उस वृक्षके फलरूप अपने कर्म-फलोंको अर्थात् प्रारब्धानुसार प्राप्त हुए सुख-दुःखोंको आसक्ति एवं द्वेषपूर्वक भोगता है और दूसरा—ईश्वर उन कर्मफलोंसे किसी प्रकारका किञ्चित् भी सम्बन्ध न जोड़कर केवल देखता रहता है ॥ १ ॥

---

* ऋग्० १ । १६४ । २०, अथर्व० ९ । १४ । २० में भी यह मन्त्र इसी रूपमें आया है।

समाने वृक्षे पुरुषो निमग्नो-
ऽनीशया शोचति मुह्यमानः ।
जुष्टं यदा पश्यत्यन्यमीश-
मस्य महिमानमिति वीतशोकः ॥ २ ॥*

समाने वृक्षे=पूर्वोक्त शरीररूपी समान वृक्षपर (रहनेवाला); **पुरुषः**= जीवात्मा; **निमग्नः**=(शरीरकी गहरी आसक्तिमें) डूबा हुआ है; **अनीशया**= असमर्थतारूप दीनताका अनुभव करता हुआ; **मुह्यमानः**=मोहित होकर; **शोचति**=शोक करता रहता है; **यदा**=जब कभी (भगवान्‌की अहैतुकी दयासे); **जुष्टम्**=(भक्तोंद्वारा नित्य) सेवित; **अन्यम्**=अपनेसे भिन्न; **ईशम्**= परमेश्वरको (और); **अस्य महिमानम्**=उनकी महिमाको; **पश्यति**=यह प्रत्यक्ष कर लेता है; **इति**=तब; **वीतशोकः**=सर्वथा शोकरहित हो जाता है ॥ २ ॥

व्याख्या—पहले वर्णन किये हुए शरीररूप एक ही वृक्षपर हृदयरूप घोंसलेमें रहनेवाला यह जीवात्मा जबतक अपने साथ रहनेवाले उन परम सुहृद् परमेश्वरकी ओर नहीं देखता, शरीरमें ही आसक्त होकर इसीमें निमग्न हुआ रहता है अर्थात् शरीरमें अतिशय ममता करके उसके द्वारा भोगोंके भोगनेमें ही रचा-पचा रहता है तबतक असमर्थतारूप दीनतासे मोहित होकर वह नाना प्रकारके दुःख भोगता रहता है। जब कभी भगवान्‌की निर्हैतुकी दयासे अपनेसे भिन्न, नित्य अपने ही समीप रहनेवाले, परम सुहृद्, परमप्रिय और भक्तोंद्वारा सेवित ईश्वरको और उनकी आश्चर्यमयी महिमाको, जो जगत्‌में सर्वत्र भिन्न-भिन्न प्रकारसे प्रकट हो रही है, प्रत्यक्ष कर लेता है, तब वह तत्काल ही सर्वथा शोकरहित हो जाता है ॥ २ ॥

सम्बन्ध—*ईश्वरके स्वरूपका वर्णन करते हुए उन्हें जान लेनेका फल बताते हैं—*

यदा पश्यः पश्यते रुक्मवर्णं
कर्तारमीशं पुरुषं ब्रह्मयोनिम् ।

---

* ये दोनों मन्त्र श्वेता० उ० ४ । ६,७ में भी इसी रूपमें आये हैं।

****

तदा विद्वान् पुण्यपापे विधूय
निरञ्जनः परमं साम्यमुपैति ॥ ३ ॥

यदा=जब; **पश्यः**=यह द्रष्टा (जीवात्मा); **ईशम्**=सबके शासक; **ब्रह्मयोनिम्**=ब्रह्माके भी आदि कारण; **कर्तारम्**=सम्पूर्ण जगत्के रचयिता; **रुक्मवर्णम्**=दिव्य प्रकाशस्वरूप; **पुरुषम्**=परमपुरुषको; **पश्यते**=प्रत्यक्ष कर लेता है; **तदा**=उस समय; **पुण्यपापे**=पुण्य-पाप दोनोंको; **विधूय**=भलीभाँति हटाकर; **निरञ्जनः**=निर्मल हुआ; **विद्वान्**=वह ज्ञानी महात्मा; **परमम्**=सर्वोत्तम; **साम्यम्**=समताको; **उपैति**=प्राप्त कर लेता है ॥ ३ ॥

व्याख्या—पूर्वोक्त प्रकारसे परमेश्वरकी आश्चर्यमयी महिमाकी ओर दृष्टिपात करके उनके सम्मुख जानेवाला द्रष्टा (जीवात्मा) जब सबके नियन्ता, ब्रह्माके भी आदि कारण, सम्पूर्ण जगत्की रचना करनेवाले, दिव्य प्रकाशस्वरूप परमपुरुष परमेश्वरका साक्षात् कर लेता है, उस समय वह अपने समस्त पुण्य-पापरूप कर्मोंका समूल नाश करके उनसे सर्वथा सम्बन्धरहित होकर परम निर्मल हुआ ज्ञानी भक्त सर्वोत्तम समताको प्राप्त हो जाता है। गीताके बारहवें अध्यायमें श्लोक १३ से १९ तक इस समताका कई प्रकारसे वर्णन किया गया है ॥ ३ ॥

प्राणो ह्येष यः सर्वभूतैर्विभाति
विजानन् विद्वान् भवते नातिवादी।
आत्मक्रीड आत्मरतिः क्रियावा-
नेष ब्रह्मविदां वरिष्ठः ॥ ४ ॥

एषः=यह (परमेश्वर); **हि**=ही; **प्राणः**=प्राण है; **यः**=जो; **सर्वभूतैः**= सब प्राणियोंके द्वारा; **विभाति**=प्रकाशित हो रहा है; **विजानन्**=(इसको) जाननेवाला; **विद्वान्**=ज्ञानी; **अतिवादी**=अभिमानपूर्वक बढ़-बढ़कर बातें करनेवाला; **न भवते**=नहीं होता (किंतु वह); **क्रियावान्**=यथायोग्य भगवत्प्रीत्यर्थ कर्म करता हुआ; **आत्मक्रीडः**=सबके आत्मरूप अन्तर्यामी परमेश्वरमें क्रीडा करता रहता है (और); **आत्मरतिः**=सबके आत्मा अन्तर्यामी

परमेश्वरमें ही रमण करता रहता है; **एषः**=यह (ज्ञानी भक्त); **ब्रह्मविदाम्**=ब्रह्मवेत्ताओंमें भी; **वरिष्ठः**=श्रेष्ठ है ॥ ४ ॥

व्याख्या—ये सर्वव्यापी परमेश्वर ही सबके प्राण हैं; जिस प्रकार शरीरकी सारी चेष्टाएँ प्राणके द्वारा होती हैं, उसी प्रकार इस विश्वमें भी जो कुछ हो रहा है, परमात्माकी शक्तिसे ही हो रहा है। समस्त प्राणियोंमें भी उन्हींका प्रकाश है, वे ही उन प्राणियोंके द्वारा प्रकाशित हो रहे हैं। इस बातको समझनेवाला ज्ञानी भक्त कभी बढ़-बढ़कर बातें नहीं करता; क्योंकि वह जानता है कि उसके अंदर भी उन सर्वव्यापक परमात्माकी ही शक्ति अभिव्यक्त है; फिर वह किस बातपर अभिमान करे। वह तो लोकसंग्रहके लिये भगवदाज्ञानुसार अपने वर्ण, आश्रमके अनुकूल कर्म करता हुआ सबके आत्मा अन्तर्यामी भगवान्‌में ही क्रीडा करता है। (गीता ६। ३१) वह सदा भगवान्‌में ही रमण करता है। ऐसा यह भगवान्‌का ज्ञानी भक्त ब्रह्मवेत्ताओंमें भी अति श्रेष्ठ है। गीतामें भी सबको वासुदेवरूप देखनेवाले ज्ञानी भक्तको महात्मा और सुदुर्लभ बताया गया है (७। १९) ॥ ४ ॥

सम्बन्ध—*उन परमात्माकी प्राप्तिके साधन बताते हैं—*

सत्येन लभ्यस्तपसा ह्येष आत्मा
सम्यग्ज्ञानेन ब्रह्मचर्येण नित्यम्।
अन्तःशरीरे ज्योतिर्मयो हि शुभ्रो
यं पश्यन्ति यतयः क्षीणदोषाः ॥ ५ ॥

एषः=यह; **अन्तःशरीरे हि**=शरीरके भीतर ही (हृदयमें विराजमान); **ज्योतिर्मयः**=प्रकाशस्वरूप (और); **शुभ्रः**=परम विशुद्ध; **आत्मा**=परमात्मा; **हि**=निस्संदेह; **सत्येन**=सत्य-भाषणसे; **तपसा**=तपसे (और); **ब्रह्मचर्येण**=ब्रह्मचर्यपूर्वक; **सम्यग्ज्ञानेन**=यथार्थ ज्ञानसे ही; **नित्यम्**=सदा; **लभ्यः**=प्राप्त होनेवाला है; **यम्**=जिसे; **क्षीणदोषाः**=सब प्रकारके दोषोंसे रहित हुए; **यतयः**=यत्नशील साधक ही; **पश्यन्ति**=देख पाते हैं ॥ ५ ॥

व्याख्या—सबके शरीरके भीतर हृदयमें विराजमान परम विशुद्ध

प्रकाशमय ज्ञानस्वरूप परब्रह्म परमात्मा, जिनको सब प्रकारके दोषोंसे रहित हुए प्रयत्नशील साधक ही जान सकते हैं, वे परमात्मा सदैव सत्य-भाषण, तपश्चर्या, संयम और स्वार्थत्याग तथा ब्रह्मचर्यके पालनसे उत्पन्न यथार्थ ज्ञानद्वारा ही प्राप्त हो सकते हैं। इनसे रहित होकर जो भोगोंमें आसक्त हैं; भोगोंकी प्राप्तिके लिये नाना प्रकारके मिथ्याभाषण करते हैं और आसक्तिवश नियमपूर्वक अपने वीर्यकी रक्षा नहीं कर सकते, वे स्वार्थपरायण अविवेकी मनुष्य उन परमात्माका अनुभव नहीं कर सकते; क्योंकि वे उनको चाहते ही नहीं॥ ५॥

सम्बन्ध—*पूर्वोक्त साधनोंमेंसे सत्यकी महिमा बताते हैं—*

सत्यमेव जयति नानृतं
सत्येन पन्था विततो देवयानः।
येनाक्रमन्त्यृषयो ह्याप्तकामा
यत्र तत् सत्यस्य परमं निधानम्॥ ६॥

सत्यम्=सत्य; **एव**=ही; **जयति**=विजयी होता है; **अनृतम्**=झूठ; **न**=नहीं; **हि**=क्योंकि; **देवयानः**=वह देवयान नामक; **पन्थाः**=मार्ग; **सत्येन**=सत्यसे; **विततः**=परिपूर्ण है; **येन**=जिससे; **आप्तकामाः**=पूर्णकाम; **ऋषयः**=ऋषिलोग (वहाँ); **आक्रमन्ति**=गमन करते हैं; **यत्र**=जहाँ; **तत्**=वह; **सत्यस्य**=सत्यस्वरूप परब्रह्म परमात्माका; **परमम्**=उत्कृष्ट; **निधानम्**=धाम है॥ ६॥

व्याख्या—सत्यकी ही विजय होती है, झूठकी नहीं। अभिप्राय यह है कि परमात्मा सत्यस्वरूप हैं; अतः उनकी प्राप्तिके लिये मनुष्यमें सत्यकी प्रतिष्ठा होनी चाहिये। परमात्मप्राप्तिके लिये तो सत्य अनिवार्य साधन है ही; जगत्में दूसरे सब कार्योंमें भी अन्ततः सत्यकी ही विजय होती है, झूठकी नहीं। जो लोग मिथ्या-भाषण, दम्भ और कपटसे उन्नतिकी आशा रखते हैं, वे अन्तमें बुरी तरहसे निराश होते हैं। मिथ्या-भाषण और मिथ्या-आचरणोंमें भी जो सत्यका आभास है, जिसके कारण दूसरे लोग उसे किसी अंशमें सत्य मान

लेते हैं, उसीसे कुछ क्षणिक लाभ-सा हो जाता है। परंतु उसका परिणाम अच्छा नहीं होता। अन्तमें सत्य सत्य ही रहता है और झूठ झूठ ही। इसीसे बुद्धिमान् मनुष्य सत्यभाषण और सदाचारको ही अपनाते हैं, झूठको नहीं; क्योंकि जिनकी भोग-वासना नष्ट हो गयी है, ऐसे पूर्णकाम ऋषिलोग जिस मार्गसे वहाँ पहुँचते हैं, जहाँ इस सत्यके परमाधार परब्रह्म परमात्मा स्थित हैं, वह देवयान-मार्ग अर्थात् उन परमदेव परमात्माको प्राप्त करनेका साधनरूप मार्ग सत्यसे ही परिपूर्ण है, उसमें असत्य-भाषण और दम्भ, कपट आदि असत् आचरणोंके लिये स्थान नहीं है॥ ६॥

सम्बन्ध—*उपर्युक्त साधनोंसे प्राप्त होनेवाले परमात्माके स्वरूपका पुनः वर्णन करते हैं—*

बृहच्च तद् दिव्यमचिन्त्यरूपं
सूक्ष्माच्च तत् सूक्ष्मतरं विभाति।
दूरात् सुदूरे तदिहान्तिके च
पश्यत्स्विहैव निहितं गुहायाम्॥ ७॥

तत्=वह परब्रह्म; **बृहत्**=महान्; **दिव्यम्**=दिव्य; **च**=और; **अचिन्त्य-रूपम्**=अचिन्त्यस्वरूप है; **च**=तथा; **तत्**=वह; **सूक्ष्मात्**=सूक्ष्मसे भी; **सूक्ष्मतरम्**=अत्यन्त सूक्ष्मरूपमें; **विभाति**=प्रकाशित होता है; **तत्**=(तथा) वह; **दूरात्**=दूरसे भी; **सुदूरे**=अत्यन्त दूर है; **[च]**=और; **इह**=इस (शरीर) में रहकर; **अन्तिके च**=अति समीप भी है; **इह**=यहाँ; **पश्यत्सु**=देखनेवालोंके भीतर; **एव**=ही; **गुहायाम्**=उनके हृदयरूपी गुफामें; **निहितम्**=स्थित है॥ ७॥

व्याख्या—वे परब्रह्म परमात्मा सबसे महान्, दिव्य—अलौकिक और अचिन्त्यस्वरूप हैं अर्थात् उनका स्वरूप मनके द्वारा चिन्तनमें आनेवाला नहीं है। अतः मनुष्यको श्रद्धापूर्वक परमात्माकी प्राप्तिके पूर्वकथित साधनोंमें लगे रहना चाहिये। वे परमात्मा अचिन्त्य एवं सूक्ष्मसे भी अत्यन्त सूक्ष्म होनेपर भी साधन करते-करते स्वयं अपने स्वरूपको साधकके हृदयमें प्रकाशित कर देते हैं। परमात्मा सर्वत्र परिपूर्ण हैं; ऐसा कोई भी स्थान नहीं, जहाँ वे न हों। अतः

वे दूरसे भी दूर हैं, अर्थात् जहाँतक हमलोग दूरका अनुभव करते हैं, वहाँ भी वे हैं और निकटसे भी निकट यहीं अपने भीतर ही हैं। अधिक क्या, देखनेवालोंमें ही उनके हृदयरूप गुफामें छिपे हुए हैं। अतः उन्हें खोजनेके लिये कहीं दूसरी जगह जानेकी आवश्यकता नहीं है ॥ ७ ॥

न चक्षुषा गृह्यते नापि वाचा
नान्यैर्देवैस्तपसा कर्मणा वा।
ज्ञानप्रसादेन विशुद्धसत्त्व-
स्ततस्तु तं पश्यते निष्कलं ध्यायमानः ॥ ८ ॥

न चक्षुषा=(वह परमात्मा) न तो नेत्रोंसे; **न वाचा**=न वाणीसे (और); **न अन्यैः**=न दूसरी; **देवैः**=इन्द्रियोंसे; **अपि**=ही; **गृह्यते**=ग्रहण करनेमें आता है (तथा); **तपसा**=तपसे; **वा**=अथवा; **कर्मणा**=कर्मोंसे भी (वह); **[न गृह्यते]**=ग्रहण नहीं किया जा सकता; **तम्**=उस; **निष्कलम्**=अवयवरहित (परमात्मा) को; **तु**=तो; **विशुद्धसत्त्वः**=विशुद्ध अन्तःकरणवाला (साधक); **ततः**=उस विशुद्ध अन्तःकरणसे; **ध्यायमानः**=(निरन्तर उसका) ध्यान करता हुआ ही; **ज्ञानप्रसादेन**=ज्ञानकी निर्मलतासे; **पश्यते**=देख पाता है ॥ ८ ॥

व्याख्या—उन परब्रह्मको मनुष्य इन आँखोंसे नहीं देख सकता; इतना ही नहीं, वाणी आदि अन्य इन्द्रियोंद्वारा भी वे पकड़में नहीं आ सकते तथा नाना प्रकारकी तपश्चर्या और कर्मोंके द्वारा भी मनुष्य उन्हें नहीं पा सकता। उन अवयवरहित परम विशुद्ध परमात्माको तो मनुष्य सब भोगोंसे मुख मोड़कर, निःस्पृह होकर विशुद्ध अन्तःकरणके द्वारा निरन्तर एकमात्र उन्हींका ध्यान करते-करते ज्ञानकी निर्मलतासे ही देख सकता है। अतः जो उन परमात्माको पाना चाहे, उसे उचित है कि संसारके भोगोंसे सर्वथा विरक्त होकर उन सबकी कामनाका त्याग करके एकमात्र परब्रह्म परमात्माको ही पानेके लिये उन्हींके चिन्तनमें निमग्न हो जाय ॥ ८ ॥

सम्बन्ध—*जब वे परब्रह्म परमात्मा सबके हृदयमें रहते हैं, तब सभी जीव उन्हें क्यों नहीं जानते ? शुद्ध अन्तःकरणवाला पुरुष ही क्या जानता है ? इस जिज्ञासापर कहते हैं—*

एषोऽणुरात्मा चेतसा वेदितव्यो
यस्मिन् प्राणः पञ्चधा संविवेश ।
प्राणैश्चित्तं सर्वमोतं प्रजानां
यस्मिन् विशुद्धे विभवत्येष आत्मा ॥ ९ ॥

यस्मिन्=जिसमें; **पञ्चधा**=पाँच भेदोंवाला; **प्राणः**=प्राण; **संविवेश**=भलीभाँति प्रविष्ट है (उसी शरीरमें रहनेवाला); **एषः**=यह ; **अणुः**=सूक्ष्म; **आत्मा**=आत्मा; **चेतसा**=मनसे; **वेदितव्यः**=जाननेमें आनेवाला है; **प्रजानाम्**=प्राणियोंका (वह); **सर्वम्**=सम्पूर्ण; **चित्तम्**=चित्त; **प्राणैः**=प्राणोंसे; **ओतम्**=व्याप्त है; **यस्मिन् विशुद्धे**=जिस अन्तःकरणके विशुद्ध होनेपर; **एषः**=यह; **आत्मा**=आत्मा; **विभवति**=सब प्रकारसे समर्थ होता है ॥ ९ ॥

व्याख्या—जिस शरीरमें प्राण, अपान, व्यान, समान और उदान—इन पाँच भेदोंवाला प्राण प्रविष्ट होकर चेष्टायुक्त कर रहा है, उसी शरीरके भीतर हृदयके मध्यभागमें मनद्वारा ज्ञातारूपसे जाननेमें आनेवाला यह सूक्ष्म जीवात्मा भी रहता है। परंतु समस्त प्राणियोंके समस्त अन्तःकरण प्राणोंसे ओत-प्रोत हो रहे हैं, अर्थात् इस प्राण और इन्द्रियोंके तृप्त करनेके लिये उत्पन्न हुई नाना प्रकारकी भोगवासनाओंसे मलिन और क्षुब्ध हो रहे हैं, इस कारण सब लोग परमात्माको नहीं जान पाते। अन्तःकरणके विशुद्ध होनेपर ही यह जीवात्मा सब प्रकारसे समर्थ होता है। अतः यदि भोगोंसे विरक्त होकर यह परमात्माके चिन्तनमें लग जाता है, तब तो परमात्माको प्राप्त कर लेता है; और यदि भोगोंकी कामना करता है तो इच्छित भोगोंको प्राप्त कर लेता है ॥ ९ ॥

यं यं लोकं मनसा संविभाति
विशुद्धसत्त्वः कामयते यांश्च कामान् ।
तं तं लोकं जयते तांश्च कामां-
स्तस्मादात्मज्ञं ह्यर्चयेद् भूतिकामः ॥ १० ॥

विशुद्धसत्त्वः=विशुद्ध अन्तःकरणवाला (मनुष्य); **यम् यम्**=जिस-जिस; **लोकम्**=लोकको; **मनसा**=मनसे; **संविभाति**=चिन्तन करता है; **च**=तथा;

यान् कामान् कामयते=जिन भोगोंकी कामना करता है; **तम् तम्**= उन-उन; **लोकम्**=लोकोंको; **जयते**=जीत लेता है; **च**=और; **तान् कामान्**=उन (इच्छित) भोगोंको भी प्राप्त कर लेता है; **तस्मात् हि**=इसीलिये; **भूतिकामः**=ऐश्वर्यकी कामनावाला मनुष्य; **आत्मज्ञम्**=शरीरसे भिन्न आत्माको जाननेवाले महात्माकी; **अर्चयेत्**=सेवा-पूजा करे ॥ १० ॥

व्याख्या—विशुद्ध अन्तःकरणवाला मनुष्य यदि भोगोंसे सर्वथा विरक्त होकर उस निर्मल अन्तःकरणद्वारा निरन्तर परब्रह्म परमेश्वरका ध्यान करता है—तब तो उन्हें प्राप्त कर लेता है यह बात आठवें मन्त्रमें कही जा चुकी है; परंतु यदि वह सर्वथा निष्काम नहीं होता तो जिस-जिस लोकका मनसे चिन्तन करता है तथा जिन-जिन भोगोंको चाहता है, उन-उन लोकोंको ही जीतता है—उन्हीं लोकोंमें जाता है तथा उन-उन भोगोंको ही प्राप्त करता है। इसलिये ऐश्वर्यकी कामनावाले मनुष्यको चाहिये कि शरीरसे भिन्न आत्माको जाननेवाले विशुद्ध अन्तःकरणयुक्त विवेकी पुरुषकी सेवा-पूजा (आदर-सत्कार) करे; क्योंकि वह अपने लिये और दूसरोंके लिये भी जो-जो कामना करता है, वह पूर्ण हो जाती है ॥ १० ॥

॥ प्रथम खण्ड समाप्त ॥ १ ॥



द्वितीय खण्ड

सम्बन्ध—*पूर्व प्रकरणमें विशुद्ध अन्तःकरणवाले साधककी सामर्थ्यका वर्णन करनेके लिये प्रसङ्गवश कामनाओंकी पूर्तिकी बात आ गयी थी; अतः निष्कामभावकी प्रशंसा और सकामभावकी निन्दा करते हुए पुनः प्रकरण आरम्भ करते हैं*—

स वेदैतत् परमं ब्रह्म धाम
यत्र विश्वं निहितं भाति शुभ्रम्।
उपासते पुरुषं ये ह्यकामा-
स्ते शुक्रमेतदतिवर्तन्ति धीराः ॥ १ ॥

सः=वह (निष्कामभाववाला पुरुष); **एतत्**=इस; **परमम्**=परम;

शुभ्रम्=विशुद्ध (प्रकाशमान); **ब्रह्म धाम**=ब्रह्मधामको; **वेद**=जान लेता है; **यत्र**=जिसमें; **विश्वम्**=सम्पूर्ण जगत्; **निहितम्**=स्थित हुआ; **भाति**=प्रतीत होता है; **ये हि**=जो भी कोई; **अकामाः**=निष्काम साधक; **पुरुषम् उपासते**= परमपुरुषकी उपासना करते हैं; **ते**=वे; **धीराः**=बुद्धिमान्; **शुक्रम्**=रजोवीर्यमय; **एतत्**=इस शरीरको; **अतिवर्तन्ति**=अतिक्रमण कर जाते हैं ॥ १ ॥

व्याख्या—थोड़ा-सा विचार करनेपर प्रत्येक बुद्धिमान् मनुष्यकी समझमें यह बात आ जाती है कि इस प्रत्यक्ष दिखायी देनेवाले जगत्के रचयिता और परमाधार कोई एक परमेश्वर अवश्य हैं। इस प्रकार जिनमें यह सम्पूर्ण जगत् स्थित हुआ प्रतीत होता है, उन परम विशुद्ध प्रकाशमय धामस्वरूप परब्रह्मपरमात्माको समस्त भोगोंकी कामनाका त्याग करके निरन्तर उनका ध्यान करनेवाला साधक जान लेता है। यह बात निश्चित है कि जो मनुष्य उन परम पुरुष परमात्माकी उपासना करते हैं और एकमात्र उन्हींको चाहते हैं, वे सर्वथा पूर्ण निष्काम होकर रहते हैं। किसी प्रकारके भोगोंमें उनका मन नहीं अटकता, अतः वे इस रजोवीर्यमय शरीरको लाँघ जाते हैं। उनका पुनर्जन्म नहीं होता। इसीलिये उन्हें बुद्धिमान् कहा गया है; क्योंकि जो सार वस्तुके लिये असारको त्याग दे वही बुद्धिमान् है ॥ १ ॥

सम्बन्ध—*अब सकाम पुरुषकी निन्दा करते हुए ऊपर कही हुई बातको स्पष्ट करते हैं—*

कामान् यः कामयते मन्यमानः
स कामभिर्जायते तत्र तत्र।
पर्याप्तकामस्य कृतात्मनस्त्वि-
हैव सर्वे प्रविलीयन्ति कामाः ॥ २ ॥

यः=जो; **कामान्**=भोगोंको; **मन्यमानः**=आदर देनेवाला मानव; **कामयते**=(उनकी) कामना करता है; **सः**=वह; **कामभिः**=उन कामनाओंके कारण; **तत्र तत्र**=उन-उन स्थानोंमें; **जायते**=उत्पन्न होता है (जहाँ वे उपलब्ध हो सकें); **तु**=परंतु; **पर्याप्तकामस्य**=जो पूर्णकाम हो चुका है, उस; **कृतात्मनः**=विशुद्ध अन्तःकरणवाले पुरुषकी; **सर्वे**=सम्पूर्ण; **कामाः**=कामनाएँ;

इह एव=यहीं; **प्रविलीयन्ति**=सर्वथा विलीन हो जाती हैं॥ २॥

व्याख्या—जो भोगोंको आदर देनेवाला है, जिसकी दृष्टिमें इस लोक और परलोकके भोग सुखके हेतु हैं, वही भोगोंकी कामना करता है और नाना प्रकारकी कामनाओंके कारण ही जहाँ-जहाँ भोग उपलब्ध हो सकते हैं, वहाँ-वहाँ कर्मानुसार उत्पन्न होता है; परंतु जो भगवान्‌को चाहनेवाले भगवान्‌के प्रेमी भक्त पूर्णकाम हो गये हैं, इस जगत्‌के भोगोंसे ऊब गये हैं, उन विशुद्ध अन्तःकरणवाले भक्तोंकी समस्त कामनाएँ इस शरीरमें ही विलीन हो जाती हैं। स्वप्नमें भी उनकी दृष्टि भोगोंकी ओर नहीं जाती। फलतः उन्हें शरीर छोड़नेपर नवीन जन्म नहीं धारण करना पड़ता। वे भगवान्‌को पाकर जन्म-मृत्युके बन्धनसे सदाके लिये छूट जाते हैं॥ २॥

सम्बन्ध—*पहले दो मन्त्रोंमें भगवान्‌के परम दुलारे जिन प्रेमी भक्तोंका वर्णन किया गया है, उन्हींको वे सर्वात्मा परब्रह्म पुरुषोत्तम दर्शन देते हैं—यह बात अब अगले मन्त्रमें कहते हैं—*

नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो
न मेधया न बहुना श्रुतेन।
यमेवैष वृणुते तेन लभ्य-
स्तस्यैष आत्मा विवृणुते तनुं स्वाम्॥ ३॥*

अयम्=यह; **आत्मा**=परब्रह्म परमात्मा; **न प्रवचनेन**=न तो प्रवचनसे; **न मेधया**=न बुद्धिसे (और); **न बहुना श्रुतेन**=न बहुत सुननेसे ही; **लभ्यः**=प्राप्त हो सकता है; **एषः**=यह; **यम्**=जिसको; **वृणुते**=स्वीकार कर लेता है; **तेन एव**=उसके द्वारा ही; **लभ्यः**=प्राप्त किया जा सकता है (क्योंकि); **एषः**=यह; **आत्मा**=परमात्मा; **तस्य**=उसके लिये; **स्वाम् तनुम्**=अपने यथार्थ स्वरूपको; **विवृणुते**=प्रकट कर देता है॥ ३॥

व्याख्या—इस मन्त्रमें यह बात समझायी गयी है कि वे परमात्मा न तो उनको मिलते हैं, जो शास्त्रोंको पढ़-सुनकर लच्छेदार भाषामें परमात्म-तत्त्वका

---

* यह मन्त्र कठोपनिषद्‌में भी इसी प्रकार है (१।२।२३)।

नाना प्रकारसे वर्णन करते हैं, न उन तर्कशील बुद्धिमान् मनुष्योंको ही मिलते हैं जो बुद्धिके अभिमानमें प्रमत्त हुए तर्कके द्वारा विवेचन करके उन्हें समझनेकी चेष्टा करते हैं और न उन्हींको मिलते हैं, जो परमात्माके विषयमें बहुत कुछ सुनते रहते हैं। वे तो उसीको प्राप्त होते हैं, जिसको वे स्वयं स्वीकार कर लेते हैं और वे स्वीकार उसीको करते हैं, जिसको उनके लिये उत्कट इच्छा होती है, जो उनके बिना रह नहीं सकता। जो अपनी बुद्धि या साधनपर भरोसा न करके केवल उनकी कृपाकी ही प्रतीक्षा करता रहता है, ऐसे कृपा-निर्भर साधकपर परमात्मा कृपा करते हैं और योगमायाका परदा हटाकर उसके सामने अपना स्वरूप प्रकट कर देते हैं॥ ३॥

नायमात्मा बलहीनेन लभ्यो
न च प्रमादात्तपसो वाप्यलिङ्गात्।
एतैरुपायैर्यतते यस्तु विद्वां-
स्तस्यैष आत्मा विशते ब्रह्मधाम॥ ४॥

अयम्=यह; **आत्मा**=परमात्मा; **बलहीनेन**=बलहीन मनुष्यद्वारा; **न लभ्यः**=नहीं प्राप्त किया जा सकता; **च**=तथा; **प्रमादात्**=प्रमादसे; **वा**=अथवा; **अलिङ्गात्**=लक्षणरहित; **तपसः**=तपसे; **अपि**=भी; **न [लभ्यः]**=नहीं प्राप्त किया जा सकता; **तु**=किंतु; **यः**=जो; **विद्वान्**=बुद्धिमान् साधक; **एतैः**=इन; **उपायैः**=उयायोंके द्वारा; **यतते**=प्रयत्न करता है; **तस्य**=उसका; **एषः**=यह; **आत्मा**=आत्मा; **ब्रह्मधाम**=ब्रह्मधाममें; **विशते**=प्रविष्ट हो जाता है॥ ४॥

व्याख्या—इस प्रकरणमें बताये हुए सबके आत्मारूप परब्रह्म परमेश्वर उपासनारूप बलसे रहित मनुष्यद्वारा नहीं प्राप्त किये जा सकते। समस्त भोगोंकी आशा छोड़कर एकमात्र परमात्माकी ही उत्कट अभिलाषा रखते हुए निरन्तर विशुद्धभावसे अपने इष्टदेवका चिन्तन करना—यही उपासनारूपी बलका संचय करना है। ऐसे बलसे रहित पुरुषको वे नहीं मिलते। इसी प्रकार कर्तव्यत्यागरूप प्रमादसे भी नहीं मिलते तथा सात्त्विक लक्षणोंसे रहित संयमरूप तपसे भी किसी साधकद्वारा नहीं प्राप्त किये जा सकते। किंतु जो बुद्धिमान् साधक इन पूर्वोक्त उपायोंसे प्रयत्न करता है, अर्थात् प्रमादरहित

होकर उत्कट अभिलाषाके साथ निरन्तर उन परमेश्वरकी उपासना करता है, उसका आत्मा परब्रह्म परमात्माके स्वरूपमें प्रविष्ट हो जाता है ॥ ४ ॥

सम्बन्ध—*उपर्युक्त प्रकारसे परमात्माको प्राप्त हुए महापुरुषोंके महत्त्वका वर्णन करते हैं—*

सम्प्राप्यैनमृषयो ज्ञानतृप्ताः
कृतात्मानो वीतरागाः प्रशान्ताः ।
ते सर्वगं सर्वतः प्राप्य धीरा
युक्तात्मानः सर्वमेवाविशन्ति ॥ ५ ॥

वीतरागाः=सर्वथा आसक्तिरहित; **कृतात्मानः**=(और) विशुद्ध अन्तः-करणवाले; **ऋषयः**=ऋषिलोग; **एनम्**=इस परमात्माको; **सम्प्राप्य**=पूर्णतया प्राप्त होकर; **ज्ञानतृप्ताः**=ज्ञानसे तृप्त (एवं); **प्रशान्ताः**=परम शान्त (हो जाते हैं); **युक्तात्मानः**=अपने-आपको परमात्मामें संयुक्त कर देनेवाले; **ते**=वे; **धीराः**=ज्ञानीजन; **सर्वगम्**=सर्वव्यापी परमात्माको; **सर्वतः**=सब ओरसे; **प्राप्य**=प्राप्त करके; **सर्वम् एव**=सर्वरूप परमात्मामें ही; **आविशन्ति**=प्रविष्ट हो जाते हैं ॥ ५ ॥

व्याख्या—वे विशुद्ध अन्तःकरणवाले सर्वथा आसक्तिरहित महर्षिगण उपर्युक्त प्रकारसे इन परब्रह्म परमात्माको भलीभाँति प्राप्त होकर ज्ञानसे तृप्त हो जाते हैं। उन्हें किसी प्रकारके अभावका बोध नहीं होता, वे पूर्णकाम—परम शान्त हो जाते हैं। वे अपने-आपको परमात्मामें लगा देनेवाले ज्ञानीजन सर्वव्यापी परमात्माको सब ओरसे प्राप्त करके सर्वरूप परमात्मामें ही पूर्णतया प्रविष्ट हो जाते हैं ॥ ५ ॥

सम्बन्ध—*इस प्रकार परमात्माको प्राप्त हुए महापुरुषोंकी महिमाका वर्णन करके अब ब्रह्मलोकमें जानेवाले महापुरुषोंकी मुक्तिका वर्णन करते हैं—*

वेदान्तविज्ञानसुनिश्चितार्थाः
संन्यासयोगाद् यतयः शुद्धसत्त्वाः ।
ते ब्रह्मलोकेषु परान्तकाले
परामृताः परिमुच्यन्ति सर्वे ॥ ६ ॥

[ये] **वेदान्तविज्ञानसुनिश्चितार्थाः**=जिन्होंने वेदान्त (उपनिषद्)

शास्त्रके विज्ञानद्वारा उसके अर्थभूत परमात्माको पूर्ण निश्चयपूर्वक जान लिया है (तथा); **संन्यासयोगात्**=कर्मफल और आसक्तिके त्यागरूप योगसे; **शुद्धसत्त्वाः**=जिनका अन्तःकरण शुद्ध हो गया है; **ते**=वे; **सर्वे**=समस्त; **यतयः**=प्रयत्नशील साधकगण; **परान्तकाले**=मरणकालमें (शरीर त्यागकर); **ब्रह्मलोकेषु**=ब्रह्मलोकमें (जाते हैं और वहाँ); **परामृताः**=परम अमृतस्वरूप होकर; **परिमुच्यन्ति**=सर्वथा मुक्त हो जाते हैं ॥ ६ ॥

व्याख्या—जिन्होंने वेदान्तशास्त्रके सम्यक् ज्ञानद्वारा उसके अर्थस्वरूप परमात्माको भलीभाँति निश्चयपूर्वक जान लिया है तथा कर्मफल और कर्मासक्तिके त्यागरूप योगसे जिनका अन्तःकरण सर्वथा शुद्ध हो गया है, ऐसे सभी प्रयत्नशील साधक मरणकालमें शरीरका त्याग करके परब्रह्म परमात्माके परम धाममें जाते हैं और वहाँ परम अमृतस्वरूप होकर संसारबन्धनसे सदाके लिये सर्वथा मुक्त हो जाते हैं ॥ ६ ॥

सम्बन्ध—*जिनको परब्रह्म परमात्माकी प्राप्ति इसी शरीरमें हो जाती है, उनकी अन्तकालमें कैसी स्थिति होती है—इस जिज्ञासापर कहते हैं—*

गताः कलाः पञ्चदश प्रतिष्ठा
देवाश्च सर्वे प्रतिदेवतासु ।
कर्माणि विज्ञानमयश्च आत्मा
परेऽव्यये सर्व एकीभवन्ति ॥ ७ ॥

पञ्चदश=पंद्रह; **कलाः**=कलाएँ; **च**=और; **सर्वे**=सम्पूर्ण; **देवाः**=देवता अर्थात् इन्द्रियाँ; **प्रतिदेवतासु**=अपने-अपने अभिमानी देवताओंमें; **गताः**=जाकर; **प्रतिष्ठाः**=स्थित हो जाते हैं; **कर्माणि**=(फिर) समस्त कर्म; **च**=और; **विज्ञानमयः**=विज्ञानमय; **आत्मा**=जीवात्मा; **सर्वे**=ये सब-के-सब; **परे अव्यये**=परम अविनाशी परब्रह्ममें; **एकीभवन्ति**=एक हो जाते हैं ॥ ७ ॥

व्याख्या—उस महापुरुषका जब देहपात होता है, उस समय पंद्रह कलाएँ*

---

* पंद्रह कलाएँ ये हैं—श्रद्धा, आकाशादि पञ्च महाभूत, इन्द्रिय, मन, अन्न, वीर्य, तप, मन्त्र, कर्म, लोक तथा नाम। (देखिये प्रश्नोपनिषद् ६।४)

***

और मनसहित सब इन्द्रियोंके देवता—ये सब अपने-अपने अभिमानी समष्टि देवताओंमें जाकर स्थित हो जाते हैं। उनके साथ उस जीवन्मुक्तका कोई सम्बन्ध नहीं रहता। उसके बाद उसके समस्त कर्म और विज्ञानमय जीवात्मा— सब-के-सब परम अविनाशी परब्रह्ममें लीन हो जाते हैं॥ ७॥

सम्बन्ध—*किस प्रकार लीन हो जाते हैं? इस जिज्ञासापर कहते हैं—*

यथा नद्यः स्यन्दमानाः समुद्रे-
ऽस्तं गच्छन्ति नामरूपे विहाय।
तथा विद्वान् नामरूपाद् विमुक्तः
परात्परं पुरुषमुपैति दिव्यम्॥ ८॥

यथा=जिस प्रकार; **स्यन्दमानाः**=बहती हुई; **नद्यः**=नदियाँ, **नामरूपे**= नाम-रूपको; **विहाय**=छोड़कर; **समुद्रे**=समुद्रमें; **अस्तम् गच्छन्ति**=विलीन हो जाती हैं; **तथा**=वैसे ही; **विद्वान्**=ज्ञानी महात्मा; **नामरूपात्**=नाम-रूपसे; **विमुक्तः**=रहित होकर; **परात् परम्**=उत्तम-से-उत्तम; **दिव्यम्**=दिव्य; **पुरुषम्**= परम पुरुष परमात्माको; **उपैति**=प्राप्त हो जाता है॥ ८॥

व्याख्या—जिस प्रकार बहती हुई नदियाँ अपना-अपना नाम-रूप छोड़कर समुद्रमें विलीन हो जाती हैं, वैसे ही ज्ञानी महापुरुष नाम-रूपसे रहित होकर परात्पर दिव्य पुरुष परब्रह्म परमात्माको प्राप्त हो जाता है— सर्वतोभावसे उन्हींमें विलीन हो जाता है॥ ८॥

स यो ह वै तत्परमं ब्रह्म वेद ब्रह्मैव भवति नास्याब्रह्मवित्कुले भवति। तरति शोकं तरति पाप्मानं गुहाग्रन्थिभ्यो विमुक्तोऽमृतो भवति॥ ९॥

ह=निश्चय ही; **यः वै**=जो कोई भी; **तत्**=उस; **परमम् ब्रह्म**=परमब्रह्म परमात्माको; **वेद**=जान लेता है; **सः**=वह महात्मा; **ब्रह्म एव**=ब्रह्म ही; **भवति**=हो जाता है; **अस्य**=इसके; **कुले**=कुलमें; **अब्रह्मवित्**=ब्रह्मको न जाननेवाला; **न भवति**=नहीं होता; **शोकम् तरति**=(वह) शोकसे पार हो जाता है; **पाप्मानम् तरति**=पापसमुदायसे तर जाता है; **गुहाग्रन्थिभ्यः**=हृदयकी गाँठोंसे; **विमुक्तः**=

सर्वथा छूटकर; **अमृतः**=अमर; **भवति**=हो जाता है ॥ ९ ॥

व्याख्या—यह बिलकुल सच्ची बात है कि जो कोई भी उस परब्रह्म परमात्माको जान लेता है, वह ब्रह्म ही हो जाता है। उसके कुलमें अर्थात् उसकी संतानोंमें कोई भी मनुष्य ब्रह्मको न जाननेवाला नहीं होता। वह सब प्रकारके शोक और चिन्ताओंसे सर्वथा पार हो जाता है, सम्पूर्ण पापसमुदायसे सर्वथा तर जाता है, हृदयमें स्थित सब प्रकारके संशय, विपर्यय, देहाभिमान, विषयासक्ति आदि ग्रन्थियोंसे सर्वथा छूटकर अमर हो जाता है। जन्म-मृत्युसे रहित हो जाता है ॥ ९ ॥

सम्बन्ध—*इस ब्रह्मविद्याके अधिकारीका वर्णन करते हैं—*

तदेतदृचाभ्युक्तम्—

क्रियावन्तः श्रोत्रिया ब्रह्मनिष्ठाः
स्वयं जुह्वत एकर्षिं श्रद्धयन्तः ।
तेषामेवैतां ब्रह्मविद्यां वदेत
शिरोव्रतं विधिवद्यैस्तु चीर्णम् ॥ १० ॥

तत्=उस ब्रह्मविद्याके विषयमें; **एतत्**=यह बात; **ऋचा अभ्युक्तम्**=ऋचाद्वारा कही गयी है; **क्रियावन्तः**=जो निष्कामभावसे कर्म करनेवाले; **श्रोत्रियाः**=वेदके अर्थके ज्ञाता (तथा); **ब्रह्मनिष्ठाः**=ब्रह्मके उपासक हैं (और); **श्रद्धयन्तः**=श्रद्धा रखते हुए; **स्वयम्**=स्वयं; **एकर्षिम्**='एकर्षि' नामवाले प्रज्वलित अग्निमें; **जुह्वते**=नियमानुसार हवन करते हैं; **तु**=तथा; **यैः**=जिन्होंने; **विधिवत्**=विधिपूर्वक; **शिरोव्रतम्**=सर्वश्रेष्ठ व्रतका; **चीर्णम्**=पालन किया है; **तेषाम् एव**=उन्हींको; **एताम्**=यह; **ब्रह्मविद्याम्**=ब्रह्मविद्या; **वदेत**=बतलानी चाहिये ॥ १० ॥

व्याख्या—जिसका इस उपनिषद्में वर्णन हुआ है, उस ब्रह्मविद्याके विषयमें यह बात ऋचा द्वारा कही गयी है कि जो अपने-अपने वर्ण, आश्रम और परिस्थितिके अनुसार निष्कामभावसे यथायोग्य कर्म करनेवाले, वेदके यथार्थ अभिप्रायको समझनेवाले, परब्रह्म परमात्माकी उपासना करनेवाले और उनके जिज्ञासु हैं, जो स्वयं 'एकर्षि' नामसे प्रसिद्ध प्रज्वलित अग्निमें शास्त्रविधिके अनुसार श्रद्धापूर्वक हवन करते हैं तथा जिन्होंने विधिपूर्वक ब्रह्मचर्य-

व्रतका पालन किया है, उन्हींको यह ब्रह्मविद्या बतलानी चाहिये ॥ १० ॥

तदेतत् सत्यमृषिरङ्गिराः पुरोवाच नैतदचीर्णव्रतोऽधीते । नमः परमऋषिभ्यो नमः परमऋषिभ्यः ॥ ११ ॥

तत्=उसी; **एतत्**=इस; **सत्यम्**=सत्यको अर्थात् यथार्थ विद्याको; **पुरा**=पहले; **अङ्गिराः ऋषिः**=अङ्गिरा ऋषिने; **उवाच**=कहा था; **अचीर्णव्रतः**=जिसने ब्रह्मचर्यव्रतका पालन नहीं किया है; **एतत्**=(वह) इसे; **न**=नहीं; **अधीते**=पढ़ सकता; **परमऋषिभ्यः नमः**=परम ऋषियोंको नमस्कार है; **परमऋषिभ्यः नमः**=परम ऋषियोंको नमस्कार है ॥ ११ ॥

व्याख्या—उस ब्रह्मविद्यारूप इस सत्यका पहले महर्षि अङ्गिराने उपर्युक्त प्रकारसे शौनक ऋषिको उपदेश दिया था। जिसने विधिपूर्वक ब्रह्मचर्यव्रतका पालन नहीं किया हो, वह इसे नहीं पढ़ पाता अर्थात् इसका गूढ़ अभिप्राय नहीं समझ सकता। परम ऋषियोंको नमस्कार है, परम ऋषियोंको नमस्कार है, इस प्रकार दो बार ऋषियोंको नमस्कार करके ग्रन्थसमाप्तिकी सूचना दी गयी है ॥ ११ ॥

॥ द्वितीय खण्ड समाप्त ॥ २ ॥

॥ तृतीय मुण्डक समाप्त ॥ ३ ॥

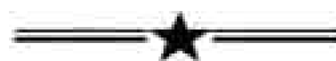
॥ अथर्ववेदीय मुण्डकोपनिषद् समाप्त ॥



शान्तिपाठ

ॐ भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः ।
स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवाँसस्तनूभिर्व्यशेम देवहितं यदायुः ॥
स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः ।
स्वस्ति नस्तार्क्ष्यो अरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु ॥
ॐ शान्तिः ! शान्तिः !! शान्तिः !!!

इसका अर्थ इसी उपनिषद्के प्रारम्भमें दिया जा चुका है।



॥ ॐ श्रीपरमात्मने नमः ॥

माण्डूक्योपनिषद्

शान्तिपाठ

ॐ भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः। स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवाँ सस्तनूभिर्व्यशेम देवहितं यदायुः॥ स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः। स्वस्ति नस्ताक्ष्र्यो अरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु॥

ॐ शान्तिः ! शान्तिः !! शान्तिः !!!

देवाः=हे देवगण !; **[वयम्] यजत्राः [सन्तः]**=हम भगवान्का यजन (आराधन) करते हुए; **कर्णेभिः**=कानोंसे; **भद्रम्**=कल्याणमय वचन; **शृणुयाम**=सुनें; **अक्षभिः**=नेत्रोंसे; **भद्रम्**=कल्याण (ही); **पश्येम**=देखें; **स्थिरैः**=सुदृढ़; **अङ्गैः**=अङ्गों; **तनूभिः**=एवं शरीरोंसे; **तुष्टुवांसः [वयम्]**=भगवान्की स्तुति करते हुए हमलोग; **यत्**=जो ; **आयुः**=आयु; **देवहितम्**=आराध्यदेव परमात्माके काम आ सके; **[तत्]**=उसका; **व्यशेम**=उपभोग करें; **वृद्धश्रवाः**=सब ओर फैले हुए सुयशवाले; **इन्द्रः**=इन्द्र; **नः**=हमारे लिये; **स्वस्ति दधातु**=कल्याणका पोषण करें; **विश्ववेदाः**=सम्पूर्ण विश्वका ज्ञान रखनेवाले; **पूषा**=पूषा; **नः**=हमारे लिये; **स्वस्ति [दधातु]**=कल्याणका पोषण करें; **अरिष्टनेमिः**=अरिष्टोंको मिटानेके लिये चक्रसदृश शक्तिशाली; **ताक्ष्र्यः**=गरुड़देव; **नः**=हमारे लिये; **स्वस्ति [दधातु]**=कल्याणका पोषण करें; (तथा) **बृहस्पतिः**=(बुद्धिके स्वामी) बृहस्पति भी; **नः**=हमारे लिये; **स्वस्ति [दधातु]**=कल्याणकी पुष्टि करें; **ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः**=परमात्मन्! हमारे त्रिविध तापकी शान्ति हो।

व्याख्या—गुरुके यहाँ अध्ययन करनेवाले शिष्य अपने गुरु, सहपाठी तथा मानवमात्रका कल्याण-चिन्तन करते हुए देवताओंसे प्रार्थना करते हैं कि 'हे देवगण ! हम अपने कानोंसे शुभ—कल्याणकारी वचन ही सुनें। निन्दा, चुगली, गाली या दूसरी-दूसरी पापकी बातें हमारे कानोंमें न पड़ें और हमारा

अपना जीवन यजन-परायण हो—हम सदा भगवान्‌की आराधनामें ही लगे रहें। न केवल कानोंसे सुनें, नेत्रोंसे भी हम सदा कल्याणका ही दर्शन करें। किसी अमङ्गलकारी अथवा पतनकी ओर ले जानेवाले दृश्योंकी ओर हमारी दृष्टिका आकर्षण कभी न हो। हमारे शरीर, हमारा एक-एक अवयव सुदृढ़ एवं सुपुष्ट हों—वह भी इसलिये कि हम उनके द्वारा भगवान्‌का स्तवन करते रहें। हमारी आयु भोग-विलास या प्रमादमें न बीते। हमें ऐसी आयु मिले, जो भगवान्‌के कार्यमें आ सके। [देवता हमारी प्रत्येक इन्द्रियोंमें व्याप्त रहकर उसका संरक्षण और संचालन करते हैं। उनके अनुकूल रहनेसे हमारी इन्द्रियाँ सुगमतापूर्वक सन्मार्गमें लगी रह सकती हैं; अतः उनसे प्रार्थना करना उचित ही है।] जिनका सुयश सब ओर फैला है, वे देवराज इन्द्र, सर्वज्ञ पूषा, अरिष्टनिवारक तार्क्ष्य (गरुड़) और बुद्धिके स्वामी बृहस्पति—ये सभी देवता भगवान्‌की दिव्य विभूतियाँ हैं। ये सदा हमारे कल्याणका पोषण करें। इनकी कृपासे हमारे साथ प्राणिमात्रका कल्याण होता रहे। आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक—सभी प्रकारके तापोंकी शान्ति हो।

ओमित्येतदक्षरमिदँ सर्वं तस्योपव्याख्यानं भूतं भवद्भविष्यदिति सर्वमोङ्कार एव। यच्चान्यत् त्रिकालातीतं तदप्योङ्कार एव॥ १॥

ॐ इति एतत्=ओं ऐसा यह; **अक्षरम्**=अक्षर (अविनाशी परमात्मा) है; **इदम्**=यह; **सर्वम्**=सम्पूर्ण जगत्; **तस्य**=उसका ही; **उपव्याख्यानम्**=उपव्याख्यान अर्थात् उसीकी निकटतम महिमाका लक्ष्य करानेवाला है; **भूतम्**=भूत (जो हो चुका); **भवत्**=वर्तमान (और); **भविष्यत्**=भविष्यत् (जो होनेवाला है); **इति**=यह; **सर्वम्**=सब-का-सब जगत्; **ओंकारः एव**=ओंकार ही है; **च**=तथा; **यत्**=जो; **त्रिकालातीतम्**=ऊपर कहे हुए तीनों कालोंसे अतीत; **अन्यत्**=दूसरा (कोई तत्त्व है); **तत्**=वह; **अपि**=भी; **ओंकारः**=ओंकार; **एव**=ही है॥ १॥

व्याख्या—इस उपनिषद्‌में परब्रह्म परमात्माके समग्र रूपका तत्त्व समझानेके लिये उनके चार पादोंकी कल्पना की गयी है। नाम और नामीकी

एकताका प्रतिपादन करनेके लिये प्रणवकी अ, उ और म्—इन तीन मात्राओंके साथ और मात्रारहित उसके अव्यक्तरूपके साथ परब्रह्म परमात्माके एक-एक पादकी समता दिखलायी गयी है। इस प्रकार इस मन्त्रमें परब्रह्म परमात्माका नाम जो ओंकार है, उसको समग्र पुरुषोत्तमसे अभिन्न मानकर यह कहा गया है कि 'ओम्' यह अक्षर ही पूर्णब्रह्म अविनाशी परमात्मा है। यह प्रत्यक्ष दिखायी देनेवाला जड-चेतनका समुदायरूप सम्पूर्ण जगत् उन्हींका उपव्याख्यान अर्थात् उन्हींकी निकटतम महिमाका निदर्शक है। जो स्थूल और सूक्ष्म जगत् पहले उत्पन्न होकर उनमें विलीन हो चुका है और जो इस समय वर्तमान है तथा जो उनसे उत्पन्न होनेवाला है—वह सब-का-सब ओंकार ही है अर्थात् परब्रह्म परमात्मा ही है। तथा जो तीनों कालोंसे अतीत इससे भिन्न है, वह भी ओंकार ही है। अर्थात् कारण, सूक्ष्म और स्थूल—इन तीन भेदोंवाला जगत् और इसको धारण करनेवाले परब्रह्मके जिस अंशकी इसके आत्मारूपमें और आधाररूपमें अभिव्यक्ति होती है, उतना ही उन परमात्माका स्वरूप नहीं है; इससे अलग भी वे हैं। अतः उनका अभिव्यक्त अंश और उससे अतीत भी जो कुछ है, वह सब मिलकर ही परब्रह्म परमात्माका समग्र रूप है।

अभिप्राय यह है कि जो कोई परब्रह्मको केवल साकार मानते हैं या निराकार मानते हैं या सर्वथा निर्विशेष मानते हैं—उन्हें सर्वज्ञता, सर्वाधारता, सर्वकारणता, सर्वेश्वरता, आनन्द, विज्ञान आदि कल्याणमय गुणोंसे सम्पन्न नहीं मानते, वे सब उन परब्रह्मके एक-एक अंशको ही परमात्मा मानते हैं। पूर्णब्रह्म परमात्मा साकार भी हैं, निराकार भी हैं तथा साकार-निराकार दोनोंसे रहित भी हैं। सम्पूर्ण जगत् उन्हींका स्वरूप है और वे इससे सर्वथा अलग भी हैं। वे सर्वगुणोंसे रन्ि निर्विशेष भी हैं और सर्वगुणसम्पन्न भी—यह मानना ही उन्हें सर्वाङ्गपूर्ण मानना है ॥ १ ॥

सम्बन्ध—*सब कुछ ओंकार कैसे है, यह कहते हैं—*

सर्वं ँ ह्येतद् ब्रह्मायमात्मा ब्रह्म सोऽयमात्मा चतुष्पात् ॥ २ ॥

हि=क्योंकि; **एतत्**=यह; **सर्वम्**=सब-का-सब; **ब्रह्म**=ब्रह्म है; **अयम्**= यह; **आत्मा**=परमात्मा (जो इस दृश्य-जगत्में परिपूर्ण है); **ब्रह्म**=ब्रह्म है; **सः**=वह; **अयम्**=यह; **आत्मा**=परमात्मा; **चतुष्पात्**==चार चरणोंवाला है ॥ २ ॥

व्याख्या—यह सम्पूर्ण जगत् ब्रह्मसे भिन्न कुछ नहीं है, सब-का-सब ब्रह्म है और ओंकार उनका नाम होनेके कारण नामीसे अभिन्न है, इसलिये सब कुछ ओंकार है—यह बात पहले मन्त्रमें कही गयी है; क्योंकि यह सम्पूर्ण जगत् उन परब्रह्म परमात्माका शरीर है और वे इसके अन्तर्यामी आत्मा हैं (अन्तर्यामिब्राह्मण बृ० उ० ७। २३), इसलिये वे सर्वात्मा ही ब्रह्म हैं। वे सर्वात्मा परब्रह्म आगे बताये हुए प्रकारसे चार पादवाले हैं। वास्तवमें उन अखण्ड निरवयव परब्रह्म परमात्माको चार पादोंवाला कहना नहीं बनता; तथापि उनके समग्र रूपकी व्याख्या करनेके लिये उनकी अभिव्यक्तिके प्रकार-भेदोंको लेकर श्रुतियोंमें जगह-जगह उनके चार पादोंकी कल्पना की गयी है, उसी दृष्टिसे यहाँ भी श्रुति कहती है॥ २॥

जागरितस्थानो बहिष्प्रज्ञः सप्ताङ्ग एकोनविंशतिमुखः स्थूलभुग्वैश्वानरः प्रथमः पादः ॥ ३ ॥

जागरितस्थानः=जाग्रत्-अवस्थाकी भाँति यह सम्पूर्ण स्थूल जगत् जिसका स्थान अर्थात् शरीर है; **बहिष्प्रज्ञः**=जिसका ज्ञान इस बाह्य जगत्में फैला हुआ है; **सप्ताङ्गः**=भूः, भुवः आदि सात लोक ही जिसके सात अङ्ग हैं; **एकोनविंशतिमुखः**=पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच कर्मेन्द्रियाँ, पाँच प्राण और चार अन्तःकरण—ये विषयोंको ग्रहण करनेवाले उन्नीस समष्टि 'करण' ही जिसके उन्नीस मुख हैं; **स्थूलभुक्**=जो इस स्थूल जगत्का भोक्ता—इसको अनुभव करनेवाला तथा जाननेवाला है, वह; **वैश्वानरः**=वैश्वानर (विश्वको धारण करनेवाला) परमेश्वर; **प्रथमः**=पहला; **पादः**=पाद है॥ ३॥

व्याख्या—परब्रह्म परमात्माके वे चार पाद कैसे और किस प्रकार हैं—यह बात समझानेके लिये जीवात्मा तथा उसके स्थूल, सूक्ष्म और कारण—इन तीनों शरीरोंके उदाहरण देते हुए उन परमात्माके तीन पादोंका वर्णन क्रमशः किया गया है। उनमेंसे पहले पादका इस मन्त्रमें वर्णन है। भाव यह है कि जिस प्रकार जाग्रत्-अवस्थामें इस स्थूल शरीरका अभिमानी जीवात्मा सिरसे लेकर पैरतक सात अङ्गोंसे युक्त होकर स्थूल विषयोंके उपभोगके द्वाररूप दस

इन्द्रिय, पाँच प्राण और चार अन्तःकरण—इस प्रकार इन उन्नीस मुखोंसे विषयोंका उपभोग करता है और उसका विज्ञान बाह्य जगत्में फैला रहता है, उसी प्रकार सात लोकरूप सात अङ्गों और समष्टि इन्द्रिय, प्राण और अन्तःकरण—इस प्रकार उन्नीस मुखोंसे युक्त इस स्थूल जगत्-रूप शरीरका आत्मा—जो सम्पूर्ण देवता, पितर, मनुष्य आदि समस्त प्राणियोंका प्रेरक और स्वामी होनेके कारण इस स्थूल जगत्का ज्ञाता और भोक्ता है (गीता ५। २९; ९। २४), जिसकी अभिव्यक्ति इस बाह्य स्थूल जगत्में हो रही है—वह सर्वरूप वैश्वानर उन पूर्णब्रह्म परमात्माका पहला पाद है।

जो विश्व अर्थात् बहुत भी हो और नर भी हो, उसे वैश्वानर कहते हैं—इस व्युत्पत्तिके अनुसार स्थूल जगत्-रूप शरीरवाले सर्वरूप परमेश्वरको यहाँ वैश्वानर कहा गया है। ब्रह्मसूत्र अध्याय १, पाद २, सूत्र २४में यह स्पष्ट कर दिया गया है कि आत्मा और ब्रह्म—इन दोनोंका वाचक जहाँ 'वैश्वानर' पद आये, वहाँ वह जीवात्माका या अग्निका नाम नहीं है। वह परब्रह्म परमेश्वरका ही वाचक है, यों समझना चाहिये। वैश्वानर-विद्यामें भी इसी प्रकार परमात्माको वैश्वानर बताया गया है (छा० उ० ५। ११। १—६); अतः यहाँ **'जागरितस्थानः'** इस पदके बलपर जाग्रत्-अवस्थाके अभिमानी जीवात्माको ब्रह्मका पहला पाद या वैश्वानर मानना ठीक नहीं मालूम होता; क्योंकि तीन अवस्थाओंके दृष्टान्तसे ब्रह्मके तीन पादोंका वर्णन करनेके पश्चात् छठे मन्त्रमें यह स्पष्ट कर दिया गया है कि जिनको इन तीनों अवस्थाओंमें स्थित बताया गया है, वे सर्वेश्वर, सर्वज्ञ, अन्तर्यामी, सम्पूर्ण जगत्के कारण तथा समस्त प्राणियोंकी उत्पत्ति और प्रलयके स्थान हैं। लक्षण जीवात्मामें नहीं घट सकते, इसलिये भी यहाँ सर्वात्मा वैश्वानर परमेश्वरको ही परब्रह्मका एक पाद कहा गया है, यही मानना युक्तिसङ्गत मालूम होता है॥ ३॥

स्वप्नस्थानोऽन्तःप्रज्ञः सप्ताङ्ग एकोनविंशतिमुखः प्रविविक्तभुक् तैजसो द्वितीयः पादः॥ ४॥

स्वप्नस्थानः=स्वप्नकी भाँति सूक्ष्म जगत् ही जिसका स्थान है; **अन्तः-**

प्रज्ञः=जिसका ज्ञान संकल्पमय सूक्ष्म जगत्में व्याप्त है; **सप्ताङ्गः**=पूर्वोक्त सात अङ्गोंवाला (और); **एकोनविंशतिमुखः**=उन्नीस मुखोंवाला; **प्रविविक्तभुक्**=सूक्ष्म जगत्का भोक्ता; **तैजसः**=तैजस—प्रकाशका स्वामी सूत्रात्मा हिरण्यगर्भ; **द्वितीयः पादः**=उस परब्रह्म परमात्माका दूसरा पाद है ॥ ४ ॥

व्याख्या—इस मन्त्रमें पूर्णब्रह्म परमात्माके दूसरे पादका वर्णन है। भाव यह है कि जिस प्रकार स्वप्न-अवस्थामें सूक्ष्मशरीरका अभिमानी जीवात्मा पहले बतलाये हुए सूक्ष्म सात अङ्गोंवाला और उन्नीस मुखोंवाला होकर सूक्ष्म विषयोंका उपभोग करता है और उसीमें उसका ज्ञान फैला रहता है, उसी प्रकार जो स्थूल अवस्थासे भिन्न सूक्ष्मरूपमें परिणत हुए सात लोकरूप सात अङ्ग तथा इन्द्रिय, प्राण और अन्तःकरणरूप उन्नीस मुखोंसे युक्त सूक्ष्म जगत्-रूप शरीरमें स्थित, उसका आत्मा हिरण्यगर्भ है, वह समस्त जडचेतनात्मक सूक्ष्म जगत्के समस्त तत्त्वोंका नियन्ता, ज्ञाता और सबको अपनेमें प्रविष्ट किये हुए है, इसलिये उसका भोक्ता और जाननेवाला कहा जाता है। वह तैजस अर्थात् सूक्ष्म प्रकाशमय हिरण्यगर्भ उन पूर्णब्रह्म परमात्माका दूसरा पाद है।

समस्त ज्योतियोंकी ज्योति, सबको प्रकाशित करनेवाले, परम प्रकाशमय हिरण्यगर्भरूप परमेश्वरका ही वर्णन यहाँ तैजस नामसे हुआ है, ब्रह्मसूत्रके **'ज्योतिश्चरणाभिधानात्'** (१ । १ । २४) इस सूत्रमें यह बात स्पष्ट की गयी है कि पुरुषके प्रकरणमें आया हुआ **'ज्योतिः'** वा **'तेजः'** शब्द ब्रह्मका वाचक ही समझना चाहिये। जहाँ ब्रह्मके पादोंका वर्णन हो, वहाँ तो दूसरा अर्थ—जीव या प्रकाश आदि मानना किसी तरह भी उचित नहीं है। उपनिषदोंमें बहुत जगह परमेश्वरका वर्णन **'ज्योतिः, (अथ यदतः परो दिवो ज्योतिर्दीप्यते**—छा० उ० ३ । १३ । ७) और **'तेजस्' (येन सूर्यस्तपति तेजसेद्धः**—तै० ब्रा० ३ । १२ । ९ । ७) के नामसे हुआ है। इसलिये यहाँ केवल **'स्वप्नस्थानः'** पदके बलपर स्वप्नावस्थाके अभिमानी जीवात्माको ब्रह्मका दूसरा पाद मान लेना उचित नहीं मालूम होता। इसमें तीसरे मन्त्रकी व्याख्यामें बताये हुए कारण तो हैं ही। उनके सिवा यह एक कारण और भी है कि स्वप्नावस्थामें जीवात्माका ज्ञान

****

जाग्रत्-अवस्थाकी अपेक्षा कम हो जाता है; किंतु यहाँ जिसका वर्णन तैजसके नामसे किया गया है, उस दूसरे पादरूप हिरण्यगर्भका ज्ञान जाग्रत्की अपेक्षा अधिक विकसित होता है। इसलिये इसको तैजस अर्थात् ज्ञानस्वरूप बतलाया है और दसवें मन्त्रमें ओंकारकी दूसरी मात्रा 'उ' के साथ इसकी एकता करते हुए इसको उत्कृष्ट (श्रेष्ठ) बताया है और इसके जाननेका फल ज्ञान-परम्पराकी वृद्धि और जाननेवालेकी संतानका ज्ञानी होना कहा है। स्वप्नाभिमानी जीवात्माके ज्ञानका ऐसा फल नहीं हो सकता, इसलिये भी तैजसका वाच्यार्थ सूक्ष्म जगत्के स्वामी हिरण्यगर्भको ही मानना युक्तिसंगत प्रतीत होता है ॥ ४ ॥

यत्र सुप्तो न कञ्चन कामं कामयते न कञ्चन स्वप्नं पश्यति तत्सुषुप्तम्। सुषुप्तस्थान एकीभूतः प्रज्ञानघन एवानन्दमयो ह्यानन्दभुक्चेतोमुखः प्राज्ञस्तृतीयः पादः ॥ ५ ॥

यत्र=जिस अवस्थामें; **सुप्तः**=सोया हुआ (मनुष्य); **कञ्चन**=किसी भी; **कामम् न कामयते**=भोगकी कामना नहीं करता; **कञ्चन**=कोई भी; **स्वप्नम्**=स्वप्न; **न**=नहीं; **पश्यति**=देखता; **तत्**=वह; **सुषुप्तम्**=सुषुप्ति-अवस्था है; **सुषुप्तस्थानः**=ऐसी सुषुप्तिकी भाँति जो जगत्की प्रलय-अवस्था अर्थात् कारण-अवस्था है, वही जिसका शरीर है; **एकीभूतः**=जो एकरूप हो रहा है; **प्रज्ञानघनः एव**=जो एकमात्र घनीभूत विज्ञानस्वरूप है; **आनन्दमयः हि**=जो एकमात्र आनन्दमय अर्थात् आनन्दस्वरूप ही है; **चेतोमुखः**=प्रकाश ही जिसका मुख है; **आनन्दभुक्**=जो एकमात्र आनन्दका ही भोक्ता है (वह); **प्राज्ञः**=प्राज्ञ; **तृतीयः पादः**=(ब्रह्मका) तीसरा पाद है ॥ ५ ॥

व्याख्या—इस मन्त्रमें जाग्रत्की कारण और लय-अवस्थारूप सुषुप्तिके साथ प्रलयकालमें कारणरूपसे स्थित जगत्की समानता दिखानेके लिये पहले सुप्रसिद्ध सुषुप्ति-अवस्थाके लक्षण बतलाकर उनके बाद पूर्णब्रह्म परमात्माके तीसरे पादका वर्णन किया गया है। भाव यह है कि जिस अवस्थामें सोया हुआ मनुष्य किसी प्रकारके किसी भी भोगकी न तो कामना करता है और न अनुभव ही करता है तथा किसी प्रकारका स्वप्न भी नहीं देखता, ऐसी

अवस्थाको सुषुप्ति कहते हैं। इस सुषुप्ति-अवस्थाके सदृश जो प्रलयकालमें जगत्की कारण-अवस्था है, जिसमें नाना 'रूपों'का प्राकट्य नहीं हुआ है— ऐसी अव्याकृत प्रकृति ही जिसका शरीर है तथा जो एक अद्वितीयरूपमें स्थित है, उपनिषदोंमें जिसका वर्णन कहीं सत्के नामसे (**'सदेव सोम्येदमग्र आसीत्'** छा० उ० ६।२।१) और कहीं आत्माके नामसे (**आत्मा वा इदमेक एवाग्र आसीत्**—ऐ० उ० १।१।१) आया है, जिसका एकमात्र चेतना (प्रकाश) ही मुख है और आनन्द ही भोजन है, वह विज्ञानघन, आनन्दमय प्राज्ञ ही उन पूर्ण ब्रह्मका तीसरा पाद है।

यहाँ प्राज्ञ नामसे भी सृष्टिके कारण सर्वज्ञ परमेश्वरका ही वर्णन है। ब्रह्मसूत्र प्रथम अध्यायके चौथे पादके अन्तर्गत पाँचवें सूत्रमें 'प्राज्ञ' शब्द ईश्वरके अर्थमें प्रयुक्त हुआ है, इसके सिवा और भी बहुत-से सूत्रोंमें ईश्वरके स्थानपर 'प्राज्ञ' शब्दका प्रयोग किया गया है। पूज्यपाद स्वामी शङ्कराचार्यने तो ब्रह्मसूत्रके भाष्यमें स्थान-स्थानपर परमेश्वरके बदले 'प्राज्ञ' शब्दका ही प्रयोग किया है। उपनिषदोंमें भी अनेक स्थलोंपर 'प्राज्ञ' शब्दका परमेश्वरके स्थानमें प्रयोग किया गया है (बृ० उ० ४।३।२१ और ४।३।३५)। प्रस्तुत मन्त्रमें साथ-ही-साथ ईश्वरसे भिन्न शरीराभिमानी जीवात्माका भी वर्णन है। यहाँ प्रकरण भी सुषुप्तिका है; इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि किसी भी दृष्टिसे 'प्राज्ञ' शब्द जीवात्माका वाचक नहीं है। ब्रह्मसूत्र (१।३।४२) के भाष्यमें स्वयं शङ्कराचार्यजीने लिखा है कि 'सर्वज्ञतारूप प्रज्ञासे नित्य संयुक्त होनेके कारण 'प्राज्ञ' नाम परमेश्वरका ही है, अतः उपर्युक्त उपनिषद्-मन्त्रमें परमेश्वरका ही वर्णन है। इसके सिवा प्राज्ञके विशेषणोंमें 'प्रज्ञानघन' और 'आनन्दमय' शब्दोंका प्रयोग है जो कि जीवात्माके वाचक हो ही नहीं सकते (देखिये ब्रह्मसूत्र १।१।१२ और १६-१७), इसलिये यहाँ केवल **'सुषुप्तिस्थानः'** पदके बलपर सुषुप्ति-अभिमानी जीवात्माको ब्रह्मका तीसरा पाद मान लेना उचित नहीं मालूम होता; क्योंकि इसके बाद अगले मन्त्रमें यह स्पष्ट कर दिया गया है कि इन तीनों अवस्थाओंमें स्थित तीन पादोंके नामसे जिनका वर्णन हुआ है, वे

सर्वेश्वर, सर्वज्ञ अन्तर्यामी, सम्पूर्ण जगत्के कारण और समस्त प्राणियोंकी उत्पत्ति और प्रलयके स्थान हैं। इसके सिवा ग्यारहवें मन्त्रमें ओंकारकी तीसरी मात्राके साथ तीसरे पादकी एकता करके उसे जाननेका फल सबको जानना और सम्पूर्ण जगत्को विलीन कर लेना बताया है; इसलिये भी '**प्राज्ञः**' पदका वाच्यार्थ कारण-जगत्के अधिष्ठाता परमेश्वरको ही समझना चाहिये। वह प्राज्ञ ही पूर्णब्रह्म परमात्माका तीसरा पाद है॥ ५॥

सम्बन्ध—*ऊपर बतलाये हुए ब्रह्मके पाद वैश्वानर, तैजस और प्राज्ञ किसके नाम हैं? इस जिज्ञासापर कहते हैं—*

एष सर्वेश्वर एष सर्वज्ञ एषोऽन्तर्याम्येष योनिः सर्वस्य प्रभवाप्ययौ हि भूतानाम्॥ ६॥

एषः=यह; **सर्वेश्वरः**=सबका ईश्वर है; **एषः**=यह; **सर्वज्ञः**=सर्वज्ञ है; **एषः**=यह; **अन्तर्यामी**=सबका अन्तर्यामी है; **एषः**=यह; **सर्वस्य**=सम्पूर्ण जगत्का; **योनिः**=कारण है; **हि**=क्योंकि; **भूतानाम्**=समस्त प्राणियोंका; प्रभवाप्ययौ=उत्पत्ति, स्थिति और प्रलयका स्थान यही है॥ ६॥

व्याख्या—जिन परमेश्वरका तीनों पादोंके रूपमें वर्णन किया गया है, वे सम्पूर्ण ईश्वरोंके भी ईश्वर हैं। ये ही सर्वज्ञ और सबके अन्तर्यामी हैं। ये ही सम्पूर्ण जगत्के कारण हैं; क्योंकि सम्पूर्ण प्राणियोंकी उत्पत्ति, स्थिति और प्रलयके स्थान ये ही हैं। प्रश्नोपनिषद्में तीनों मात्राओंसे युक्त ओंकारके द्वारा परम पुरुष परमेश्वरका ध्यान करनेकी बात कहकर उसका फल समस्त पापोंसे रहित हो अविनाशी परात्पर पुरुषोत्तमको प्राप्त कर लेना बताया गया है (५। ५)। अतः पूर्ववर्णित वैश्वानर, तैजस और प्राज्ञ परमेश्वरके ही नाम हैं। अलग-अलग स्थितिमें उन्हींका वर्णन भिन्न-भिन्न नामोंसे किया गया है॥ ६॥

सम्बन्ध—*अब पूर्णब्रह्म परमात्माके चौथे पादका वर्णन करते हैं—*

नान्तःप्रज्ञं न बहिष्प्रज्ञं नोभयतःप्रज्ञं न प्रज्ञानघनं न प्रज्ञं नाप्रज्ञम्। अदृष्टमव्यवहार्यमग्राह्यमलक्षणमचिन्त्यमव्यपदेश्य-मेकात्मप्रत्ययसारं प्रपञ्चोपशमं शान्तं शिवमद्वैतं चतुर्थं मन्यन्ते स आत्मा स विज्ञेयः॥ ७॥

न अन्तःप्रज्ञम्=जो न भीतरकी ओर प्रज्ञावाला है; **न बहिष्प्रज्ञम्**=न बाहरकी ओर प्रज्ञावाला है; **न उभयतःप्रज्ञम्**=न दोनों ओर प्रज्ञावाला है; **न प्रज्ञानघनम्**=न प्रज्ञानघन है; **न प्रज्ञम्**=न जाननेवाला है; **न अप्रज्ञम्**=न नहीं जाननेवाला है; **अदृष्टम्**=जो देखा नहीं गया है; **अव्यवहार्यम्**=जो व्यवहारमें नहीं लाया जा सकता; **अग्राह्यम्**=जो पकड़नेमें नहीं आ सकता; **अलक्षणम्**=जिसका कोई लक्षण (चिह्न) नहीं है; **अचिन्त्यम्**=जो चिन्तन करनेमें नहीं आ सकता; **अव्यपदेश्यम्**=जो बतलानेमें नहीं आ सकता; **एकात्मप्रत्ययसारम्**=एकमात्र आत्मसत्ताकी प्रतीति ही जिसका सार (प्रमाण) है; **प्रपञ्चोपशमम्**=जिसमें प्रपञ्चका सर्वथा अभाव है, ऐसा; **शान्तम्**=सर्वथा शान्त; **शिवम्**=कल्याणमय; **अद्वैतम्**=अद्वितीय तत्त्व; **चतुर्थम्**=(परब्रह्म परमात्माका) चौथा पाद है; **मन्यन्ते**=(इस प्रकार ब्रह्मज्ञानी) मानते हैं; **सः आत्मा**=वह परमात्मा (है); **सः विज्ञेयः**=वह जाननेयोग्य (है) ॥ ७ ॥

व्याख्या—इस मन्त्रमें निर्गुण-निराकार निर्विशेष स्वरूपको पूर्णब्रह्म परमात्माका चौथा पाद बताया गया है। भाव यह है कि जिसका ज्ञान न तो बाहरकी ओर है, न भीतरकी ओर है और न दोनों ही ओर है; जो न ज्ञानस्वरूप है, न जाननेवाला है और न नहीं जाननेवाला ही है; जो न देखनेमें आ सकता है, न व्यवहारमें लाया जा सकता है, न ग्रहण करनेमें आ सकता है, न चिन्तन करनेमें, न बतलानेमें आ सकता है और न जिसका कोई लक्षण ही है, जिसमें समस्त प्रपञ्चका अभाव है, एकमात्र परमात्मसत्ताकी प्रतीति ही जिसमें सार (प्रमाण) है—ऐसा सर्वथा, शान्त, कल्याणमय, अद्वितीय तत्त्व पूर्णब्रह्मका चौथा पाद माना जाता है। इस प्रकार जिनका चार पादोंमें विभाग करके वर्णन किया गया, वे ही पूर्णब्रह्म परमात्मा हैं, उन्हींको जानना चाहिये।

इस मन्त्रमें '**चतुर्थम् मन्यते**' पदके प्रयोगसे यह स्पष्ट हो जाता है कि यहाँ परब्रह्म परमात्माके चार पादोंकी कल्पना केवल उनका तत्त्व समझानेके लिये ही की गयी है; वास्तवमें अवयवरहित परमात्माके कोई भाग नहीं है।

जो पूर्णब्रह्म परमात्मा स्थूल जगत्में परिपूर्ण हैं, वे ही सूक्ष्म और कारण जगत्के अन्तर्यामी और अधिष्ठाता भी हैं; तथा वे ही इन सबसे अलग निर्विशेष परमात्मा हैं। वे सर्वशक्तिमान् भी हैं और सब शक्तियोंसे रहित भी हैं। वे सगुण भी हैं और निर्गुण भी। वे साकार भी हैं और निराकार भी। वास्तवमें वे हमारी बुद्धि और तर्कसे सर्वथा अतीत हैं ॥ ७ ॥

सम्बन्ध—*उक्त परब्रह्म परमात्माकी उनके वाचक प्रणवके साथ एकता करते हुए कहते हैं—*

सोऽयमात्माध्यक्षरमोङ्कारोऽधिमात्रं पादा मात्रा मात्राश्च पादा अकार उकारो मकार इति ॥ ८ ॥

सः=वह (जिसको चार पादवाला बताया गया है); **अयम्**=यह; **आत्मा**=परमात्मा; **अध्यक्षरम्**=(उसके वाचक) प्रणवके अधिकारमें (प्रकरणमें) वर्णित होनेके कारण; **अधिमात्रम्**=तीन मात्राओंसे युक्त; **ओंकारः**=ओंकार है; **अकारः**='अ'; **उकारः**='उ' (और); **मकारः**='म'; **इति**=ये (तीनों); **मात्राः**=मात्राएँ ही; **पादाः**=(तीन) पाद हैं; **च**=और; **पादाः**=(उस ब्रह्मके तीन) पाद ही; **मात्राः**=(तीन) मात्राएँ हैं ॥ ८ ॥

व्याख्या—वे परब्रह्म परमात्मा, जिनके चार पादोंका वर्णन किया गया है, यहाँ अक्षरके प्रकरणमें अपने नामसे अभिन्न होनेके कारण तीन मात्राओंवाला ओंकार हैं। 'अ', 'उ' और 'म'—ये तीनों मात्राएँ ही उनके उपर्युक्त तीन पाद हैं और उनके तीनों पाद ही ओंकारकी तीन मात्राएँ हैं। जिस प्रकार ओंकार अपनी मात्राओंसे अलग नहीं है, उसी प्रकार अपने पादोंसे परमात्मा अलग नहीं हैं। यहाँ पाद और मात्राकी एकता ओंकारके द्वारा परब्रह्म परमात्माकी उपासनाके लिये की गयी है—ऐसा मालूम होता है ॥ ८ ॥

सम्बन्ध—*ओंकारकी किस मात्रासे ब्रह्मके किस पादकी एकता है और वह क्यों है ? इस जिज्ञासापर तीन मात्राओंका रहस्य समझानेके लिये प्रथम पहले पाद और पहली मात्राकी एकताका प्रतिपादन करते हैं—*

जागरितस्थानो वैश्वानरोऽकारः प्रथमा मात्राऽऽप्ते-

रादिमत्त्वाद्वाऽऽप्नोति ह वै सर्वान्कामानादिश्च भवति य एवं वेद ॥ ९ ॥

प्रथमा:=(ओंकारकी) पहली; **मात्रा**=मात्रा; **अकारः**=अकार ही; **आप्तेः**=(समस्त जगत्‌के नामोंमें अर्थात् शब्दमात्रमें) व्याप्त होनेके कारण; **वा**=और; **आदिमत्त्वात्**=आदिवाला होनेके कारण; **जागरितस्थानः**=जगत्‌की भाँति स्थूल जगत्-रूप शरीरवाला; **वैश्वानरः**=वैश्वानर नामक पहला पाद है; **यः**=जो; **एवम्**=इस प्रकार; **वेद**=जानता है; **[सः] ह वै**=वह अवश्य ही; **सर्वान्**=सम्पूर्ण; **कामान्**=भोगोंको; **आप्नोति**=प्राप्त कर लेता है; **च**=और; **आदिः**=सबका आदि (प्रधान); **भवति**=बन जाता है ॥ ९ ॥

व्याख्या—परब्रह्म परमात्माके नामात्मक ओंकारकी जो पहली मात्रा 'अ' है, यह समस्त जगत्‌के नामोंमें अर्थात् किसी भी अर्थको बतलानेवाले जितने भी शब्द हैं, उन सबमें व्याप्त है। स्वर अथवा व्यञ्जन—कोई भी वर्ण अकारसे रहित नहीं है। श्रुति भी कहती है—'**अकारो वै सर्वा वाक्**' (ऐतरेय आरण्यक० २। ३। ६)। गीतामें भी भगवान्‌ने कहा है कि अक्षरोंमें (वर्णोंमें) मैं 'अ' हूँ (१०। ३३) तथा समस्त वर्णोंमें 'अ' ही पहला वर्ण है। इसी प्रकार इस स्थूल जगत्-रूप विराट् शरीरमें वे वैश्वानररूप अन्तर्यामी परमेश्वर व्याप्त हैं और विराट्-रूपसे सबके पहले स्वयं प्रकट होनेके कारण इस जगत्‌के आदि भी वे ही हैं। इस प्रकार 'अ' की और जगत्‌की भाँति प्रत्यक्ष दिखायी देनेवाले इस स्थूल जगत्-रूप शरीरमें व्याप्त वैश्वानर नामक प्रथम पादकी एकता होनेके कारण 'अ' ही पूर्णब्रह्म परमेश्वरका पहला पाद है। जो मनुष्य इस प्रकार अकार और विराट् शरीरके आत्मा परमेश्वरकी एकताको जानता है और उनकी उपासना करता है, वह सम्पूर्ण कामनाओंको अर्थात् इच्छित पदार्थोंको पा लेता है और जगत्‌में प्रधान—सर्वमान्य हो जाता है ॥ ९ ॥

सम्बन्ध—*अब दूसरे पादकी और दूसरी मात्राकी एकताका प्रतिपादन करते हैं—*

स्वप्नस्थानस्तैजस उकारो द्वितीया मात्रोत्कर्षादुभयत्वा-द्वोत्कर्षति ह वै ज्ञानसंततिं समानश्च भवति नास्याब्रह्म-

विल्कुले भवति य एवं वेद ॥ १० ॥

द्वितीया=(ओंकारकी) दूसरी; **मात्रा**=मात्रा; **उकारः**='उ'; **उत्कर्षात्**=('अ' से) उत्कृष्ट होनेके कारण; **वा**=और; **उभयत्वात्**=दोनों भाववाला होनेके कारण; **स्वप्नस्थानः**=स्वप्नकी भाँति सूक्ष्म जगत्-रूप शरीरवाला; **तैजसः**=तैजस नामक (दूसरा पाद) है; **यः**=जो; **एवम्**=इस प्रकार; **वेद**=जानता है; **[सः] ह वै**=वह अवश्य ही; **ज्ञानसंततिम्**=ज्ञानकी परम्पराको; **उत्कर्षति**=उन्नत करता है; **च**=और; **समानः**=समान भाववाला; **भवति**=हो जाता है; **अस्य**=इसके; **कुले**=कुलमें; **अब्रह्मवित्**=हिरण्यगर्भरूप परमेश्वरको न जाननेवाला; **न**=नहीं; **भवति**=होता ॥ १० ॥

व्याख्या—परब्रह्म परमात्माके नामात्मक ओंकारकी दूसरी मात्रा जो 'उ' है, यह 'अ'से उत्कृष्ट (ऊपर उठा हुआ) होनेके कारण श्रेष्ठ है तथा 'अ' और 'म' इन दोनोंके बीचमें होनेके कारण उन दोनोंके साथ इसका घनिष्ठ सम्बन्ध है; अतः यह उभयस्वरूप है। इसी प्रकार वैश्वानरसे तैजस (हिरण्यगर्भ) उत्कृष्ट है तथा वैश्वानर और प्राज्ञके मध्यगत होनेसे वह उभयसम्बन्धी भी है। इस समानताके कारण ही 'उ' को 'तैजस' नामक द्वितीय पाद कहा गया है। भाव यह है कि इस स्थूल जगत्के प्राकट्यसे पहले परमेश्वरके आदि संकल्पद्वारा जो सूक्ष्म सृष्टि उत्पन्न होती है, जिसका वर्णन मानस-सृष्टिके नामसे आता है, जिसमें समस्त तत्त्व तन्मात्राओंके रूपमें रहते हैं, स्थूलरूपमें परिणत नहीं होते, उस सूक्ष्म जगत्-रूप शरीरमें चेतन प्रकाशस्वरूप हिरण्यगर्भ परमेश्वर इसके अधिष्ठाता होकर रहते हैं तथा कारण-जगत् और स्थूल-जगत्—इन दोनोंसे ही सूक्ष्म जगत्का घनिष्ठ सम्बन्ध है, इसलिये वे कारण और स्थूल दोनों रूपवाले हैं। इस तरह 'उ'की और मानसिक सृष्टिके अधिष्ठाता तैजसरूप दूसरे पादकी समानता होनेके कारण 'उ' ही पूर्णब्रह्म परमात्माका दूसरा पाद है। जो मनुष्य इस प्रकार 'उ' और तेजोमय हिरण्यगर्भरूपकी एकताके रहस्यको समझ लेता है, वह स्वयं इस जगत्के सूक्ष्म तत्त्वोंको भलीभाँति प्रत्यक्ष कर लेता है, इस कारण इस ज्ञानकी परम्पराको उन्नत करता है—उसे बढ़ाता है तथा सर्वत्र समभाववाला हो

जाता है; क्योंकि जगत्के सूक्ष्म-तत्त्वोंको समझ लेनेके कारण उसका वास्तविक रहस्य समझमें आ जानेसे उसकी विषमताका नाश हो जाता है। इसलिये उससे उत्पन्न हुई संतान भी कोई ऐसी नहीं होती, जिसको हिरण्यगर्भरूप परमेश्वरके उपर्युक्त रहस्यका ज्ञान न हो जाय॥ १०॥

सुषुप्तस्थानः प्राज्ञो मकारस्तृतीया मात्रा मितेरपीतेर्वा मिनोति ह वा इदं सर्वमपीतिश्च भवति य एवं वेद॥ ११॥

तृतीया=(ओंकारकी) तीसरी; **मात्रा**=मात्रा; **मकारः**='म' ही; **मितेः**=माप करनेवाला (जाननेवाला) होनेके कारण; **वा**=और; **अपीतेः**=विलीन करनेवाला होनेसे; **सुषुप्तस्थानः**=सुषुप्तिकी भाँति कारणमें विलीन जगत् ही जिसका शरीर है; **प्राज्ञः**=प्राज्ञ नामक तीसरा पाद है; **यः**=जो; **एवम्**=इस प्रकार; **वेद**=जानता है, **[सः] ह वै**=वह अवश्य ही; **इदम्**=इस; **सर्वम्**=सम्पूर्ण कारण-जगत्को; **मिनोति**=माप लेता है अर्थात् भलीभाँति जान लेता है; **च**=और; **अपीतिः**=सबको अपनेमें विलीन करनेवाला; **भवति**=हो जाता है॥ ११॥

व्याख्या—परमात्माके नामात्मक ओंकारकी जो तीसरी मात्रा 'म' है, यह 'मा' धातुसे बना है। 'मा' धातुका अर्थ माप लेना यानी अमुक वस्तु इतनी है, यह समझ लेना है। यह 'म' ओंकारकी अन्तिम मात्रा है; 'अ' और 'उ' के पीछे उच्चरित होती है—इस कारण दोनोंका माप इसमें आ जाता है; अतः यह उनको जाननेवाला है। तथा 'म'का उच्चारण होते-होते मुख बंद हो जाता है; 'अ' और 'उ' दोनों उसमें विलीन हो जाते हैं; अतः वह उन दोनों मात्राओंको अन्तमें विलीन करनेवाला भी है। इसी प्रकार सुषुप्तस्थानीय कारण-जगत्का अधिष्ठाता प्राज्ञ भी सर्वज्ञ है। स्थूल, सूक्ष्म और कारण—इन तीनों अवस्थाओंमें स्थित जगत्को जाननेवाला है। कारण-जगत्से ही सूक्ष्म और स्थूल जगत्की उत्पत्ति होती है और उसीमें उनका लय होता है। इस प्रकार 'म' की और कारण-जगत्के अधिष्ठाता प्राज्ञ नामक तीसरे पादकी समता होनेके कारण 'म' रूप तीसरी मात्रा ही पूर्ण ब्रह्मका तीसरा पाद है। जो मनुष्य इस प्रकार 'म' और 'प्राज्ञ' स्वरूप

परमेश्वरकी एकताको जानता है—इस रहस्यको समझकर ओंकारके स्मरणद्वारा परमेश्वरका चिन्तन करता है, वह इस मूलसहित सम्पूर्ण जगत्‌को भली प्रकार जान लेता है और सबको विलीन करनेवाला हो जाता है, अर्थात् उसकी बाह्य दृष्टि निवृत्त हो जाती है। अतः वह सर्वत्र एक परब्रह्म परमेश्वरको ही देखनेवाला बन जाता है॥ ११॥

सम्बन्ध—*मात्रारहित ओंकारकी चौथे पादके साथ एकताका प्रतिपादन करते हुए इस उपनिषद्‌का उपसंहार करते हैं—*

अमात्रश्चतुर्थोऽव्यवहार्यः प्रपञ्चोपशमः शिवोऽद्वैत एवमोङ्कार आत्मैव संविशत्यात्मनाऽऽत्मानं य एवं वेद य एवं वेद॥ १२॥

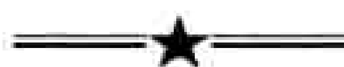
एवम्=इसी प्रकार; **अमात्रः**=मात्रारहित; **ओंकारः**=प्रणव ही; **अव्यवहार्यः**=व्यवहारमें न आनेवाला; **प्रपञ्चोपशमः**=प्रपञ्चसे अतीत; **शिवः**=कल्याणमय; **अद्वैतः**=अद्वितीय; **चतुर्थः**=पूर्ण ब्रह्मका चौथा पाद है; **[सः] आत्मा**=वह आत्मा; **एव**=अवश्य ही; **आत्मना**=आत्माके द्वारा; **आत्मानम्**=परात्परब्रह्म परमात्मामें; **संविशति**=पूर्णतया प्रविष्ट हो जाता है; **यः**=जो; **एवम्**=इस प्रकार; **वेद**=जानता है; **यः एवम् वेद**=जो इस प्रकार जानता है॥ १२॥

व्याख्या—परब्रह्म परमात्माके नामात्मक ओंकारका जो मात्रारहित, बोलनेमें न आनेवाला निराकार स्वरूप है, वही मन-वाणीका अविषय होनेसे व्यवहारमें न लाया जा सकनेवाला, प्रपञ्चसे अतीत, कल्याणमय, अद्वितीय—निर्गुण-निराकाररूप चौथा पाद है, भाव यह है कि जिस प्रकार तीन मात्राओंकी पहले बताये हुए तीन पादोंके साथ समता है, उसी प्रकार ओङ्कारके निराकार स्वरूपकी परब्रह्म परमात्माके निर्गुण-निराकार निर्विशेषरूप चौथे पादके साथ समता है। जो मनुष्य इस प्रकार ओंकार और परब्रह्म परमात्माकी अर्थात् नाम और नामीकी एकताके रहस्यको समझकर परब्रह्म परमात्माको पानेके लिये उनके नाम-जपका अवलम्बन लेकर तत्परतासे साधन करता है, वह

निस्संदेह आत्मासे आत्मामें अर्थात् परात्पर परब्रह्म परमात्मामें प्रविष्ट हो जाता है। 'जो इस प्रकार जानता है' इस वाक्यको दो बार कहकर उपनिषद्की समाप्ति सूचित की गयी है।

परब्रह्म परमात्मा और उनके नामकी महिमा अपार है, उसका कोई पार नहीं पा सकता। इस प्रकरणमें उन असीम पूर्ण ब्रह्म परमात्माके चार पादोंकी कल्पना उनके स्थूल, सूक्ष्म और कारण—इन तीनों सगुण रूपोंकी और निर्गुण-निराकार स्वरूपकी एकता दिखानेके लिये तथा नाम और नामीकी सब प्रकारसे एकता दिखानेके लिये एवं उनकी सर्वभवन-सामर्थ्यरूप जो अचिन्त्य शक्ति है, वह उनसे सर्वथा अभिन्न है—यह भाव दिखानेके लिये की गयी है, ऐसा अनुमान होता है॥ १२॥

॥ अथर्ववेदीय माण्डूक्योपनिषद् समाप्त ॥



शान्तिपाठ

ॐ भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः।
स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवाँसस्तनूभिर्व्यशेम देवहितं यदायुः॥*
स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः।
स्वस्ति नस्तार्क्ष्यो अरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु॥†
ॐ शान्तिः! शान्तिः!! शान्तिः!!!

इसका अर्थ इस उपनिषद्के आदिमें दिया जा चुका है।



* यह मन्त्र ऋग्वेद (१०।८९।६) में है तथा यजुर्वेद (२५।१९) में भी है।
† यह मन्त्र ऋग्वेद (१०।८९।८) में है तथा यजुर्वेद २५।२१ में भी है।

॥ ॐ श्रीपरमात्मने नमः ॥

ऐतरेयोपनिषद्

ऋग्वेदीय ऐतरेय आरण्यकमें दूसरे आरण्यकके चौथे, पाँचवें और छठे अध्यायोंको ऐतरेय-उपनिषद्के नामसे कहा गया है। इन तीन अध्यायोंमें ब्रह्मविद्याकी प्रधानता है। इस कारण इन्हींको 'उपनिषद्' माना है।

शान्तिपाठ

ॐ वाङ् मे मनसि प्रतिष्ठिता। मनो मे वाचि प्रतिष्ठित-माविरावीर्म एधि। वेदस्य म आणीस्थः श्रुतं मे मा प्रहासीः। अनेनाधीतेनाहोरात्रान्संदधाम्यृतं वदिष्यामि। सत्यं वदिष्यामि तन्मामवतु। तद्वक्तारमवतु। अवतु मामवतु वक्तारमवतु वक्तारम्॥

ॐ शान्तिः! शान्तिः!! शान्तिः!!!

ॐ=हे सच्चिदानन्दस्वरूप परमात्मन्!; **मे**=मेरी; **वाक्**=वाक्-इन्द्रिय; **मनसि**=मनमें; **प्रतिष्ठिता**=स्थित हो जाय; **मे**=मेरा; **मनः**=मन; **वाचि**=वाक्-इन्द्रियमें; **प्रतिष्ठितम्**=स्थित हो जाय; **आविः**=हे प्रकाशस्वरूप परमेश्वर!; **मे**=मेरे लिये; **आवीः एधि**=(तू) प्रकट हो; **मे**=(हे मन और वाणी! तुम दोनों) मेरे लिये; **वेदस्य**=वेदविषयक ज्ञानको; **आणीस्थः**=लानेवाले बनो; **मे**=मेरा; **श्रुतम्**=सुना हुआ ज्ञान; **मा प्रहासीः**=(मुझे) न छोड़े; **अनेन अधीतेन**=इस अध्ययनके द्वारा; **अहोरात्रान्**=(मैं) दिन और रात्रियोंको; **संदधामि**=एक कर दूँ; **ऋतम्**=(मैं) श्रेष्ठ शब्दोंको ही; **वदिष्यामि**=बोलूँगा; **सत्यम्**=सत्य ही; **वदिष्यामि**=बोला करूँगा; **तत्**=वह (ब्रह्म); **माम् अवतु**=मेरी रक्षा करे; **तत्**=वह (ब्रह्म); **वक्तारम् अवतु**=आचार्यकी रक्षा करे; **अवतु माम्**=रक्षा करे मेरी (और); **अवतु वक्तारम्**=रक्षा करे (मेरे)

आचार्यकी; **अवतु वक्तारम्**=रक्षा करे (मेरे) आचार्यकी; **ओम् शान्तिः**= भगवान् शान्तिस्वरूप हैं; **शान्तिः**=शान्तिस्वरूप हैं; **शान्तिः**=शान्तिस्वरूप हैं।

व्याख्या—इस शान्तिपाठमें सब प्रकारके विघ्नोंकी शान्तिके लिये परमात्मासे प्रार्थना की गयी है। प्रार्थनाका भाव यह है कि 'हे सच्चिदानन्दस्वरूप परमात्मन्! मेरी वाणी मनमें स्थित हो जाय और मन वाणीमें स्थित हो जाय; अर्थात् मेरे मन-वाणी दोनों एक हो जायँ। ऐसा न हो कि मैं वाणीसे एक पाठ पढ़ता रहूँ और मन दूसरा ही चिन्तन करता रहे या मनमें दूसरा ही भाव रहे और वाणीद्वारा दूसरा प्रकट करूँ। मेरे संकल्प और वचन दोनों विशुद्ध होकर एक हो जायँ। हे प्रकाशस्वरूप परमेश्वर! आप मेरे लिये प्रकट हो जाइये—अपनी योगमायाका पर्दा मेरे सामनेसे हटा लीजिये। (इस प्रकार परमात्मासे प्रार्थना करके अब उपासक अपने मन और वाणीसे कहता है कि) हे मन और वाणी! तुम दोनों मेरे लिये वेदविषयक ज्ञानकी प्राप्ति करानेवाले बनो—तुम्हारी सहायतासे मैं वेदविषयक ज्ञान प्राप्त कर सकूँ। मेरा गुरुमुखसे सुना हुआ और अनुभवमें आया हुआ ज्ञान मेरा त्याग न करे अर्थात् वह सर्वदा मुझे स्मरण रहे—मैं उसे कभी न भूलूँ। मेरी इच्छा है कि अपने अध्ययनद्वारा मैं दिन और रात एक कर दूँ। अर्थात् रात-दिन निरन्तर ब्रह्मविद्याका पठन और चिन्तन ही करता रहूँ। मेरे समयका एक क्षण भी व्यर्थ न बीते। मैं अपनी वाणीसे सदा ऐसे ही शब्दोंका उच्चारण करूँगा; जो सर्वथा उत्तम हो, जिनमें किसी प्रकारका दोष न हो; तथा जो कुछ बोलूँगा, सर्वथा सत्य बोलूँगा—जैसा देखा, सुना और समझा हुआ भाव है, ठीक वही भाव वाणीद्वारा प्रकट करूँगा। उसमें किसी प्रकारका छल नहीं करूँगा। (इस प्रकार अपने मन और वाणीको दृढ़ बनाकर अब पुनः परमात्मासे प्रार्थना करता है—) वे परब्रह्म परमात्मा मेरी रक्षा करें। वे परमेश्वर मुझे ब्रह्मविद्या सिखानेवाले आचार्यकी रक्षा करें। वे रक्षा करें मेरी और मेरे आचार्यकी, जिससे मेरे अध्ययनमें किसी प्रकारका विघ्न उपस्थित न हो। आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक—तीनों प्रकारके विघ्नोंकी सर्वथा निवृत्तिके

लिये तीन बार '**शान्तिः**' पदका उच्चारण किया गया है। भगवान् शान्तिस्वरूप हैं, इसलिये उनके स्मरणसे शान्ति निश्चित है।

प्रथम अध्याय

प्रथम खण्ड

ॐ आत्मा वा इदमेक एवाग्र आसीत्। नान्यत्किंचन मिषत्। स ईक्षत लोकान्नु सृजा इति ॥ १ ॥

ॐ=ॐ इस परमात्माके नामका उच्चारण करके उपनिषद्का आरम्भ करते हैं; **इदम्**=यह जगत्; **अग्रे**=(प्रकट होनेसे) पहले; **एकः**=एकमात्र; **आत्मा**=परमात्मा; **वै**=ही; **आसीत्**=था; **अन्यत्**=(उसके सिवा) दूसरा; **किंचन एव**=कोई भी; **मिषत्**=चेष्टा करनेवाला; **न**=नहीं था; **सः**=उस (परम पुरुष परमात्मा) ने; **नु**=(मैं) निश्चय ही; **लोकान् सृजै**=लोकोंकी रचना करूँ; **इति**=इस प्रकार; **ईक्षत**=विचार किया ॥ १ ॥

व्याख्या—इस मन्त्रमें परमात्माके सृष्टि-रचनाविषयक प्रथम संकल्पका वर्णन है। भाव यह है कि देखने-सुनने और समझनेमें आनेवाले जड-चेतनमय प्रत्यक्ष जगत्के इस रूपमें प्रकट होनेसे पहले कारण-अवस्थामें एकमात्र परमात्मा ही थे। उस समय इसमें भिन्न-भिन्न नाम-रूपोंकी अभिव्यक्ति नहीं थी। उस समय उन परब्रह्म परमात्माके सिवा दूसरा कोई भी चेष्टा करनेवाला नहीं था। सृष्टिके आदिमें उन परम पुरुष परमात्माने यह विचार किया कि 'मैं प्राणियोंके कर्म-फल-भोगार्थ भिन्न-भिन्न लोकोंकी रचना करूँ' ॥ १ ॥

स इमाँल्लोकानसृजत। अम्भो मरीचीर्मरमापोऽदोऽम्भः परेण दिवं द्यौः प्रतिष्ठान्तरिक्षं मरीचयः पृथिवी मरो या अधस्तात्ता आपः ॥ २ ॥

सः=उसने; **अम्भः**=अम्भ (द्युलोक तथा उसके ऊपरके लोक); **मरीचीः**=मरीचि (अन्तरिक्ष); **मरम्**=मर (मर्त्यलोक) (और); **आपः**=जल (पृथिवीके नीचेके लोक); **इमान्**=इन सब; **लोकान् असृजत**=लोकोंकी

रचना की; **दिवम् परेण**=द्युलोक—स्वर्गलोकसे ऊपरके लोक; **प्रतिष्ठा**=(तथा) उनका आधारभूत; **द्यौः**=द्युलोक भी; **अदः**=वे सब; **अम्भः**='अम्भ'के नामसे कहे गये हैं; **अन्तरिक्षम्**=अन्तरिक्ष लोक (भुवर्लोक) ही; **मरीचयः**=मरीचि है (तथा); **पृथिवी**=यह पृथ्वी ही; **मरः**=मर—मृत्युलोकके नामसे कही गयी है (और); **याः**=जो; **अधस्तात्**=(पृथ्वीके) नीचे—भीतरी भागमें (स्थूल पातालादि लोक) हैं; **ताः**=वे; **आपः**=जलके नामसे कहे गये हैं ॥ २ ॥

व्याख्या—यह विचार करके परब्रह्म परमेश्वरने अम्भ, मरीचि, मर और जल—इन लोकोंकी रचना की। इन शब्दोंको स्पष्ट करनेके लिये आगे श्रुतिमें ही कहा गया है कि स्वर्गलोकसे ऊपर जो महः, जनः, तपः और सत्य लोक हैं, वे और उनका आधार द्युलोक—इन पाँचों लोकोंको यहाँ 'अम्भः' नामसे कहा गया है। उसके नीचे जो अन्तरिक्षलोक (भुवर्लोक) है, जिसमें सूर्य, चन्द्र और तारागण—ये सब किरणोंवाले लोकविशेष हैं, उसका वर्णन यहाँ मरीचि नामसे किया गया है। उसके नीचे जो यह पृथ्वीलोक है— जिसको मृत्युलोक भी कहते हैं, वह यहाँ 'मर' के नामसे कहा गया है और उसके नीचे अर्थात् पृथ्वीके भीतर जो पातालादि लोक हैं, वे 'आपः'के नामसे कहे गये हैं। तात्पर्य यह कि जगत्‌में जितने भी लोक त्रिलोकी, चतुर्दश भुवन एवं सप्त लोकोंके नामसे प्रसिद्ध हैं, उन सब लोकोंकी परमात्माने रचना की ॥ २ ॥

स ईक्षतेमे नु लोका लोकपालान्नु सृजा इति सोऽद्भ्य एव पुरुषं समुद्धृत्यामूर्छयत् ॥ ३ ॥

सः=उसने; **ईक्षत**=फिर विचार किया; **इमे**=ये; **नु**=तो हुए; **लोकाः**=लोक; (अब) **लोकपालान् नु सृजै**=लोकपालोंकी भी रचना मुझे अवश्य करनी चाहिये; **इति**=यह विचार करके; **सः**=उसने; **अद्भ्यः**=जलसे; **एव**=ही; **पुरुषम्**=हिरण्यगर्भरूप पुरुषको; **समुद्धृत्य**=निकालकर; **अमूर्छयत्**=उसे मूर्तिमान् बनाया ॥ ३ ॥

व्याख्या—इस प्रकार इन समस्त लोकोंकी रचना करनेके अनन्तर

परमेश्वरने फिर विचार किया कि 'ये सब लोक तो रचे गये। अब इन लोकोंकी रक्षा करनेवाले लोकपालोंकी रचना भी मुझे अवश्य करनी चाहिये; अन्यथा बिना रक्षकके ये सब लोक सुरक्षित नहीं रह सकेंगे। यह सोचकर उन्होंने जलमेंसे अर्थात् जल आदि सूक्ष्म महाभूतोंमेंसे हिरण्यमय पुरुषको निकालकर उसको समस्त अङ्ग-उपाङ्गोंसे युक्त करके मूर्तिमान् बनाया। यहाँ 'पुरुष' शब्दसे सृष्टिकालमें सबसे पहले प्रकट किये जानेवाले ब्रह्माका वर्णन किया गया है; क्योंकि ब्रह्मासे ही सब लोकपालोंकी और प्रजाको बढ़ानेवाले प्रजापतियोंकी उत्पत्ति हुई है—इस विषयका विस्तृत वर्णन शास्त्रोंमें पाया जाता है और ब्रह्माकी उत्पत्ति जलके भीतरसे कमलनालसे हुई, ऐसा भी वर्णन आता है। अतः यहाँ 'पुरुष' शब्दका अर्थ ब्रह्मा मान लेना उचित जान पड़ता है ॥ ३ ॥

तमभ्यतपत्तस्याभितप्तस्य मुखं निरभिद्यत यथाण्डं मुखाद्वाग् वाचोऽग्निर्नासिके निरभिद्येतां नासिकाभ्यां प्राणः प्राणाद्वायुरक्षिणी निरभिद्येतामक्षिभ्यां चक्षुश्चक्षुष आदित्यः कर्णौ निरभिद्येतां कर्णाभ्यां श्रोत्रं श्रोत्राद्दिशस्त्वङ् निरभिद्यत त्वचो लोमानि लोमभ्य ओषधिवनस्पतयो हृदयं निरभिद्यत हृदयान्मनो मनसश्चन्द्रमा नाभिर्निरभिद्यत नाभ्या अपानोऽपानान्मृत्युः शिश्नं निरभिद्यत शिश्नाद्रेतो रेतस आपः ॥ ४ ॥

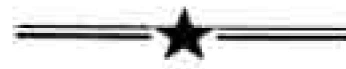
(परमात्माने) **तम्**=उस (हिरण्यगर्भरूप पुरुष) को लक्ष्य करके; **अभ्यतपत्**=संकल्परूप तप किया; **अभितप्तस्य**=उस तपसे तपे हुए; **तस्य**=हिरण्यगर्भके शरीरसे; **यथाण्डम्**=(पहले) अण्डेकी तरह (फूटकर); **मुखम्**=मुख-छिद्र; **निरभिद्यत**=प्रकट हुआ; **मुखात्**=मुखसे; **वाक्**=वाक्-इन्द्रिय (और); **वाचः**=वाक्-इन्द्रियसे; **अग्निः**=अग्निदेवता प्रकट हुआ (फिर); **नासिके**=नासिकाके दोनों छिद्र; **निरभिद्येताम्**=प्रकट हुए; **नासिकाभ्याम्**=नासिका-छिद्रोंमेंसे; **प्राणः**=प्राण उत्पन्न हुआ (और); **प्राणात्**=प्राणसे; **वायुः**=वायुदेवता उत्पन्न हुआ (फिर); **अक्षिणी**=दोनों आँखोंके छिद्र; **निरभिद्येताम्**=प्रकट हुए; **अक्षिभ्याम्**=आँखोंके छिद्रोंमेंसे;

चक्षुः=नेत्र-इन्द्रिय प्रकट हुई (और); **चक्षुषः**=नेत्र-इन्द्रियसे; **आदित्यः**=सूर्य प्रकट हुआ (फिर); **कर्णौ**=दोनों कानोंके छिद्र; **निरभिद्येताम्**=प्रकट हुए; **कर्णाभ्याम्**=कानोंसे; **श्रोत्रम्**=श्रोत्र-इन्द्रिय प्रकट हुई (और); **श्रोत्रात्**=श्रोत्र-इन्द्रियसे; **दिशः**=दिशाएँ प्रकट हुईं (फिर); **त्वक्**=त्वचा; **निरभिद्यत**=प्रकट हुई; **त्वचः**=त्वचासे; **लोमानि**=रोम उत्पन्न हुए (और); **लोमभ्यः**=रोमोंसे; **ओषधिवनस्पतयः**=ओषधि और वनस्पतियाँ प्रकट हुईं (फिर); **हृदयम्**=हृदय; **निरभिद्यत**=प्रकट हुआ; **हृदयात्**=हृदयसे; **मनः**=मनका आविर्भाव हुआ (और); **मनसः**=मनसे; **चन्द्रमाः**=चन्द्रमा उत्पन्न हुआ (फिर); **नाभिः**=नाभि; **निरभिद्यत**=प्रकट हुई; **नाभ्या**=नाभिसे; **अपानः**=अपानवायु प्रकट हुआ (और); **अपानात्**=अपानवायुसे; **मृत्युः**=मृत्युदेवता उत्पन्न हुआ (फिर); **शिश्नम्**=लिङ्ग; **निरभिद्यत**=प्रकट हुआ; **शिश्नात्**=लिङ्गसे; **रेतः**=वीर्य (और); **रेतसः**=वीर्यसे; **आपः**=जल उत्पन्न हुआ ॥ ४ ॥

व्याख्या—इस प्रकार हिरण्यगर्भ पुरुषको उत्पन्न करके उसके अङ्ग-उपाङ्गोंके व्यक्त करनेके उद्देश्यसे जब परमात्माने संकल्परूप तप किया, तब उस तपके फलस्वरूप हिरण्यगर्भ पुरुषके शरीरमें सर्वप्रथम अण्डेकी भाँति फूटकर मुख-छिद्र निकला। मुखसे वाक्-इन्द्रिय उत्पन्न हुई और वाक्-इन्द्रियसे उसका अधिष्ठातृ-देवता अग्नि उत्पन्न हुआ। फिर नासिकाके दोनों छिद्र हुए, उनमेंसे प्राणवायु प्रकट हुआ और प्राणोंसे वायुदेवता उत्पन्न हुआ। यहाँ प्राणेन्द्रियका अलग वर्णन नहीं है; अतः प्राण-इन्द्रिय और उसके देवता अश्विनीकुमार भी नासिकासे ही उत्पन्न हुए—यों समझ लेना चाहिये। इसी प्रकार रसना-इन्द्रिय और उसके देवताका भी अलग वर्णन नहीं है; अतः मुखसे वाक्-इन्द्रियके साथ-साथ रसना-इन्द्रिय और उसके देवताकी भी उत्पत्ति हुई—यह समझ लेना चाहिये। फिर आँखोंके दोनों छिद्र प्रकट हुए, उनमेंसे नेत्र-इन्द्रिय और नेत्र-इन्द्रियसे उसका देवता सूर्य उत्पन्न हुआ। फिर कानोंके दोनों छिद्र निकले, उनमेंसे श्रोत्र-इन्द्रिय प्रकट हुई और श्रोत्र-इन्द्रियसे उसके देवता दिशाएँ उत्पन्न हुईं। उसके बाद त्वचा (चर्म) प्रकट हुई,

त्वचासे रोम उत्पन्न हुए, रोमोंसे ओषधियाँ और वनस्पतियाँ उत्पन्न हुईं। फिर हृदय प्रकट हुआ, हृदयसे मन और मनसे उसका अधिष्ठाता चन्द्रमा उत्पन्न हुआ। फिर नाभि प्रकट हुई, नाभिसे अपानवायु और अपानवायुसे गुदा-इन्द्रियका अधिष्ठाता मृत्युदेवता उत्पन्न हुआ। नाभिकी उत्पत्तिके साथ ही गुदा-छिद्र और गुदा-इन्द्रियकी उत्पत्ति भी समझ लेनी चाहिये। यहाँ अपानवायु मलत्यागमें हेतु होनेके कारण और उसका स्थान नाभि होनेके कारण मुख्यतासे उसीका नाम लिया गया है। परंतु मृत्यु अपानका अधिष्ठाता नहीं है, वह गुदा-इन्द्रियका अधिष्ठाता है; अतः उपलक्षणसे गुदा-इन्द्रियका वर्णन भी इसके अन्तर्गत मान लेना उचित प्रतीत होता है। फिर लिङ्ग प्रकट हुआ, उसमेंसे वीर्य और उससे जल उत्पन्न हुआ। यहाँ लिङ्गकी उत्पत्तिसे उपस्थेन्द्रिय और उसका देवता प्रजापति उत्पन्न हुआ—यह बात भी समझ लेनी चाहिये ॥ ४ ॥

॥ प्रथम खण्ड समाप्त ॥ १ ॥



द्वितीय खण्ड

ता एता देवताः सृष्टा अस्मिन् महत्यर्णवे प्रापतंस्तमशनायापिपासाभ्यामन्ववार्जत् ता एनमब्रुवन्नायतनं नः प्रजानीहि यस्मिन् प्रतिष्ठिता अन्नमदामेति ॥ १ ॥

ताः=वे; **एताः सृष्टाः**=परमात्माद्वारा रचे हुए ये सब; **देवताः**=अग्नि आदि देवता; **अस्मिन्**=इस (संसाररूप); **महति अर्णवे**=महान् समुद्रमें; **प्रापतन्**=आ पड़े; (तब परमात्माने) **तम्**=उस (समस्त देवताओंके समुदाय) को; **अशनायापिपासाभ्याम्**=भूख और प्याससे; **अन्ववार्जत्**=युक्त कर दिया; (तब) **ताः**=वे सब अग्नि आदि देवता; **एनम् अब्रुवन्**=इस परमात्मासे बोले (भगवन्!); **नः**=हमारे लिये; **आयतनम् प्रजानीहि**=एक ऐसे स्थानकी व्यवस्था कीजिये; **यस्मिन्**=जिसमें; **प्रतिष्ठिताः**=स्थित रहकर; (हमलोग) **अन्नम्**=अन्न; **अदाम इति**=भक्षण करें ॥ १ ॥